ॐ पूर्णमद: पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते। पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते॥

शान्ता महान्तो निवसन्ति सन्तो वसन्तवल्लोकहितं चरन्तः। तीर्णाः स्वयं भीमभवार्णवं जनानहेतुनान्यानपि तारयन्तः॥

वर्ष ८९ गोरखपुर, सौर माघ, वि० सं० २०७१, श्रीकृष्ण-सं० ५२४०, जनवरी २०१५ ई० पूर्ण संख्या १०५८

### सेवकद्वारा सेव्यकी आराधना

ॐ नमो भगवते उत्तमश्लोकाय नम आर्यलक्षणशीलव्रताय नम उपशिक्षितात्मन उपासितलोकाय नमः साधुवादनिकषणाय नमो ब्रह्मण्यदेवाय महापुरुषाय महाराजाय नम इति॥

यत्तद्विशुद्धानुभवमात्रमेकं स्वतेजसा ध्वस्तगुणव्यवस्थम्।

प्रत्यक् प्रशान्तं सुधियोपलम्भनं ह्यनामरूपं निरहं प्रपद्ये॥ [श्रीहनुमान्जी अपने परम सेव्यकी स्तुति करते हुए कहते हैं—] हम ॐकारस्वरूप पवित्रकीर्ति भगवान् श्रीरामको नमस्कार करते हैं। आपमें सत्पुरुषोंके लक्षण, शील और आचरण विद्यमान हैं; आप बड़े ही संयतिचत्त, लोकाराधनतत्पर, साधुताकी परीक्षाके लिये कसौटीके समान और अत्यन्त ब्राह्मणभक्त हैं। ऐसे

महापुरुष महाराज राम को हमारा पुन:-पुन: प्रणाम है।

भगवन्! आप विशुद्ध बोधस्वरूप, अद्वितीय, अपने स्वरूपके प्रकाशसे गुणोंके कार्यरूप जाग्रदादि सम्पूर्ण अवस्थाओंका निरास करनेवाले, सर्वान्तरात्मा, परम शान्त, शुद्ध बुद्धिसे ग्रहण किये जानेयोग्य, नाम-रूपसे रहित

अवस्थाआका निरास करनवाल, सवान्तरात्मा, परम शान्त, शुद्ध बुद्धिस ग्रहण किय जानयाग्य, नाम-रूपस राह और अहंकारशून्य हैं; मैं आपकी शरणमें हूँ। [ श्रीमद्भागवत ]



### श्रीहरि:

### 'सेवा–अङ्क'की विषय–सूची

1999   90-	लख्या	ावपव पृष्ठ-स	હ્લા
१- सेवकद्वारा सेव्यकी आराधना	. ११	२५- सेवा कैसे करें ? (ब्रह्मलीन श्रद्धेय स्वामी	
शुभाशंसा—		श्रीरामसुखदासजी महाराज)	<i>७७</i>
२- श्रुतिसेवादर्शन—सौमनस्य	. १९	२६- भक्तिमती मीराका दास्य-भाव	
३- 'अतिथिदेवो भव'		(गोलोकवासी सन्त पूज्यपाद श्रीप्रभुदत्त	
४- सेवापथ		ब्रह्मचारीजी महाराज)	७९
५- सेवामय जीवन—एक व्यावहारिक दर्शन		२७- सेवाका अवसर प्राप्त होना—महान् अहोभाग्य है	
(राधेश्याम खेमका)	. २३	(गोलोकवासी पं० श्रीगयाप्रसादजी महाराजके	
प्रसाद—		सदुपदेश)	८२
६- सेवाधर्मके प्रतिष्ठाता भगवान् साम्बसदाशिव और		२८- माता-पिताकी सेवाके कतिपय अनुकरणीय उदाहरण	
उनके सेवोपदेश	. ३१	(गोलोकवासी पं० श्रीलालबिहारीजी मिश्र)	८३
७– सेवककी इच्छा क्या!	. ३५	आशीर्वाद—	
८- भगवान् श्रीरामद्वारा स्थापित सेवामर्यादा	. ३६	२९- भगवत्सेवाको महत्ता (अनन्तश्रीविभूषित दक्षिणाम्नायस्थ	
९- ' सर्वभूतहिते रता: '		शृंगेरी-शारदापीठाधीश्वर जगद्गुरु शंकराचार्य स्वामी	
[ भगवान् श्रीकृष्णके सेवासम्बन्धी अमृत-वचन]	. ३९	श्रीभारतीतीर्थजी महाराज)	୧୬
१०- हे प्रभु! मैं सेवक तुम स्वामी [कविता]		३०- 'ऐसे राम दीन-हितकारी' [विनय-पत्रिका]	22
( श्रीसुखनारायणजी मिश्र)		३१- सेवातत्त्व-मीमांसा (अनन्तश्रीविभूषित श्रीद्वारकाशारदा-	
११- राजर्षि मनु और उनका सेवा-विधान	. 88	पीठाधीश्वर जगद्गुरु शंकराचार्य स्वामी	
१२- सती देवहूतिकी पतिसेवा और भगवत्सेवा	. ५०	श्रीस्वरूपानन्दसरस्वतीजी महाराज)	८९
१३- भगवान् श्रीआद्यशंकराचार्य और		३२- प्राणि-सेवासे ब्रह्मानन्दकी प्राप्ति	९२
उनका सेवा-दर्शन	. ५३	३३- सेव्य-सेवक-सेवा-स्वरूपविमर्श ( अनन्तश्रीविभूषित	
१४- प्रत्येक व्यक्ति एक-दूसरेका सेवक है	. ५७	जगद्गुरु शंकराचार्य पुरीपीठाधीश्वर स्वामी	
१५- सर्वोच्च ध्येय (ब्रह्मनिष्ठ सन्त पूज्यपाद		श्रीनिश्चलानन्दसरस्वतीजी महाराज)	९३
श्रीउड़ियाबाबाजी महाराजके सेवोपदेश)	. ५८	३४- परोपकाराय सतां विभूतय: (अनन्तश्रीविभूषित ऊर्ध्वाम्नाय	
१६- दास्ययोग (ब्रह्मलीन धर्मसम्राट् स्वामी		श्रीकाशीसुमेरुपीठाधीश्वर जगद्गुरु शंकराचार्य स्वामी	
श्रीकरपात्रीजी महाराज)	. ५९	श्रीचिन्मयानन्दसरस्वतीजी महाराज)	९६
१७- सेवा, सहानुभूति और उदारता (ब्रह्मलीन योगिराज		३५- 'चिरकारी प्रशस्यते' [महाभारत, शान्तिपर्व]	९७
श्रीदेवराहा बाबाजीके अमृत-वचन)		३६- श्रीभगवन्निम्बार्काचार्य एवं उनकी परम्परामें सेवाका	
[प्रेषक—श्रीसंकठासिंहजी]	. ६१	स्वरूप (अनन्तश्रीविभूषित जगद्गुरु श्रीनिम्बार्काचार्य-	
१८- सेवा-निष्ठा (ब्रह्मलीन स्वामी श्रीअखण्डानन्द		पीठाधीश्वर श्रीराधासर्वेश्वरशरणदेवाचार्य	
सरस्वतीजी महाराज)		श्री 'श्रीजी' महाराज)	९८
१९- भक्ति अर्थात् सेवा (स्वामी श्रीप्रेमपुरीजी महाराज)	. ६६	३७- सेवातत्त्वमीमांसा (परमपूज्य सन्त श्रीहरिहरजी	
२०– सेवासे परम कल्याण		महाराज दिवेगाँवकर)	९९
(ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका)		३८- सेवामय-जीवन	
२१- निरपेक्ष सेवा-धर्म (संत श्रीविनोबा भावे)	. ৩१	(गीतामनीषी स्वामी श्रीवेदान्तानन्दजी महाराज)	१०१
२२- सेवाका स्वरूप (नित्यलीलालीन श्रद्धेय भाईजी		३९- सेवा-धर्म (मलुकपीठाधीश्वर संत	

७३

194

४०- सेवामीमांसा

४१- 'सेवा' मोक्षका मार्ग

श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार) .....

श्रीरामशरणदासजी) [प्रेषक—श्रीअनिरुद्धजी गोयल]

२३- धर्मका अंग है माता-पिताकी सेवा (गोलोकवासी भक्त

२४- सेवागंगा [कविता]

श्रीराजेन्द्रदासजी महाराज) .....

(ब्रह्मचारी श्रीत्र्यम्बकेश्वरचैतन्यजी महाराज).......

१०४

१०५

विषय	पृष्ठ-संख्या	विषय पृष्ठ-स	ांख्या
सेवाके विविध आयाम—		- ६४- निष्काम सेवाव्रती माँ ( श्रीशुभंकर बाबू, एम०ए०)	१६३
भगवत्सेवा		६५- वृद्धजनोंकी सेवा—व्यावहारिक समस्याएँ एवं	
४२- सेवा और भगवत्कैंकर्य (शास्त्रार्थपंचानन	ī	समाधान ( श्री आर० पी० सिंहजी,	
पं० श्रीप्रेमाचार्यजी शास्त्री)	१०९	ए०एम०आई०ई०, इलेक्ट्रानिक्स)	१६४
४३- भगवत्सेवाका विशिष्ट स्वरूप और साधन	₹	६६- पितृसेवाके आदर्श निदर्शन—'सुकर्मा'	
( श्रीभँवरलालजी परिहार)	११२	(डॉ० श्रीमुकुन्दपतिजी त्रिपाठी 'रत्नमालीय')	१६६
४४- भगवत्सेवाका स्वरूप तथा माहात्म्य		६७- पितृभक्त सोमशर्मा	१६९
( अनुरक्तिमार्गीय वैष्णवाचार्य गोस्वामी		६८- पितृभक्त खलासी-बालक	१७०
श्रीराधामोहनदासजी महाराज)		६९- श्रवणकुमारकी मातृ-पितृसेवा	१७१
[प्रेषक—श्रीप्रेमानन्ददासजी ब्रह्मचारी]	११५	७०- भीष्म पितामहकी पितृसेवा	१७३
४५- सेवा धर्मके आदर्श—श्रीराम		७१- आरुणिकी गुरुसेवा	१७४
(डॉ० श्रीतारकेश्वरजी उपाध्याय)	११७	७२- उपमन्युकी गुरुसेवा	१७५
४६- दास्य-रतिके अनुपम आदर्श श्रीहनुमान्ज	नी	७३- छत्रपति शिवाजीकी आदर्श गुरुसेवा	१७६
( श्रीराजेन्द्रप्रसादजी द्विवेदी)	१२२	७४- 'गुरु-सेवासँ बाढिकेँ धर्म ने दोसर आन'	
४७- सेवा-निष्ठाका चमत्कार [ श्री 'चक्र ' जी	] १२७	[गुरुसेवाका एक दृष्टान्त] (श्रीनागानन्दजी)	१७७
४८- 'सब तें सेवक धरमु कठोरा' [ श्रीभरतजी	का सेवादर्शन]	अतिथिसेवा	
(आचार्य पं० श्रीचन्द्रभूषणजी ओझा)	१२८	७५- भारतीय संस्कृतिमें अतिथि-सेवा	
४९- मुनि सुतीक्ष्णजीकी दास्यभक्ति		(डॉ० श्रीजगदीशसिंहजी राठौर)	১৩১
(श्रीगजाननजी पाण्डेय)	१३३	७६- महर्षि मुद्गलको अतिथि-सेवा	१८०
५०- युवराज अंगदका सेवाभाव		७७- कपोत-दम्पतीकी अतिथि-सेवा	१८१
[नीचि टहल गृह कै सब करिहउँ]		७८- भक्त दामोदर दम्पतीकी अतिथि-सेवा	१८२
( श्रीसुरेन्द्र कुमारजी गर्ग, एम०ए० )	१३५	७९- सती श्रुतावतीको अतिथि-सेवा	१८४
५१- निषादराज गुहको श्रीराम-सेवा (श्रीआन	न्दीलालजी	८०- महाराणाकी अतिथि-सेवा	१८५
यादव, एम० ए०, एल-एल० बी०)	१३६	८१- विद्यासागरकी अतिथि-सेवा	१८६
५२- गृध्रराज जटायुकी श्रीरामके प्रति निष्काम	सेवा १३९	८२- विनायकदेवकी अतिथिसेवा और	
५३- भक्तिमती मीराजीकी सेवकाई		शिवाजीकी ब्राह्मण भक्ति	१८६
(आचार्य डॉ० श्रीचन्द्रभूषणजी मिश्र)	१४०	८३- स्वामी टेऊँरामजीकी अतिथि-सेवा	
५४- सालबेगकी भगवत्सेवा		(प्रेमप्रकाशी श्रीनवीनकुमारजी)	१८८
( आचार्य डॉ० श्रीउदयनाथजी झा 'अशोव	क <i>'</i> ,	पतिसेवा	
एम०ए०, डी०लिट०)	१४२	८४- सती सावित्रीका पातिव्रतधर्म	१८९
५५- भगवती अन्नपूर्णाकी गृह-परिचर्या		८५- पतिव्रताके सदाचरण	
(आचार्य डॉ० श्रीपवनकुमारजी शास्त्री, र	साहित्याचार्य,	[द्रौपदी-सत्यभामा-संवाद]	१९५
विद्यावारिधि, एम०ए०, पी-एच०डी०)	१४४	८६- सती सुकन्याकी पतिसेवा	१९७
५६- जनाबाईकी भक्तसेवा [ भक्तसेवासे भगवह	(र्शन] १४७	८७- सती बहिणाबाईकी पतिसेवा	२००
५७- पतिव्रता लक्ष्मीबाईकी संतसेवा	१४८	८८- पतिसेवासे भगवद्दर्शन	
५८- पीपादम्पतीकी अद्भुत संतसेवा		[भक्त शान्तोबाकी सती धर्मपत्नीकी कथा]	२०१
५९- सरयूदासकी संतसेवा	१५१	८९- पतिसेवाकी मूर्ति सती भोगवती	२०३
६०- भक्त धनुर्दासदम्पतीकी संतसेवा	१५२	९०- भामतीकी अद्भुत पति-सेवा	
माता-पिता एवं गुरुसेव	Т	( श्रीयुत एस० एस० बोरा)	२०५
६१- वृद्ध माता-पिताकी सेवा (श्रीरमेशचन्द्रः	जी बादल,	रोगियों एवं दीन-दुखियोंकी सेवा	
एम०ए०, बी०एड०, विशारद)	१५३	९१- दीनोंकी नि:स्वार्थ सेवा—सच्ची भगवत्सेवा	
६२- मातृ-पितृसेवा (डॉ० श्रीविष्णुदत्तजी गौड़	5,	(डॉ० श्रीगणेशदत्तजी सारस्वत)	२०८
एम०ए०, एम०फिल०, पी-एच०डी०) .	१५७	९२- असहायोंकी सेवा सच्ची सेवा है ( श्रीशिवरतनजी	
६३- माँसे बड़ा न कोय (आचार्य श्रीव्रजबन्धुः	रारणजी) १६०	मोरोलिया 'शास्त्री', एम० ए०)	२१०

विषय पृष्ठ-	पंख्या	विषय पृष्ठ-	संख्या
९३- महाराज रन्तिदेवकी आर्तजनोंकी सेवा	२११	११९- हमीद खाँ भाटीकी गोसेवा ( श्रीरामेश्वरजी टाँटिया)	
९४– प्राणिमात्रकी सेवाके आदर्श—महामना पं० मदनमोहन		[ प्रेषक—श्रीनन्दलालजी टॉॅंटिया]	२५०
मालवीय ( श्री एम० जी० दीक्षित)	२१२	१२०- हुमायूँकी गोभक्ति	२५२
९५- ईश्वरचन्द्र विद्यासागरकी दीन-दुखियोंके प्रति		१२१- गोसेवाका साक्षात् फल	
सेवा-भावना	२१५	(स्वामी श्रीभूमानन्दजी)	२५३
९६- नाग महाशयके सेवाभावके कतिपय प्रसंग	२१६	१२२- गोसेवाके आदर्श—बाबा हरिरामजी गाय-ग्वाला	
९७- राष्ट्रपिता गांधीजी—सेवाके अन्तरंग संस्मरण		( श्रीसांवरमलजी विश्राम)	२५४
('राष्ट्रश्री'डॉ० श्रीगौरीशंकरजी गुप्त)	२१७	१२३- गौ-सेवाने बदला जीवन	
९८- श्रीचैतन्य महाप्रभुका सेवा-भाव	२२०	(डॉ० श्रीराजकुमारजी शर्मा)	२५६
९९- सन्त फ्रांसिसका आदर्श सेवा-भाव	२२१	१२४- हंसादेवीकी गोसेवा ( श्रीधीरेन्द्रकुमारजी 'धीरज')	२५८
१००- सन्त सेरापियोंकी दीन-दुखियोंकी सेवा	२२२	१२५- हिन्दी-कवियोंकी गो-भक्ति	
१०१- रानी एलिजाबेथकी दीन-दुखियों और		(श्रीगौरीशंकरजी गुप्त)	२६०
कुष्ठ-रोगियोंकी सेवा	२२२	समाजसेवा एवं देशसेवा	
१०२- फादर दामियेन—कोढ़ियोंका देवता		१२६– अनुकरणीय है सम्राट् अशोकका सेवा–भाव	
(जे० पी० वास्वानी) [नवनीत-सौरभ]	२२५	( डॉ० श्रीराकेशकुमारजी सिन्हा 'रवि', एम०ए०,	
१०३- पूंजा बाबाकी पीड़ित वन्य पशु-पक्षियोंकी		पी-एच०डी०, डी०लिट०)	२६४
सेवा-साधना ( श्रीश्यामूजी संन्यासी)		१२७- देशभक्ति और समाजसेवाके महान् प्रेरक	
[नवनीत-सौरभ]	२२७	स्वामी रामतीर्थ (डॉ० श्रीविद्यानन्दजी 'ब्रह्मचारी',	
१०४- चिकित्सक और सेवाधर्म (वैद्य श्रीगोपीनाथजी		एम०ए०, बो०एड०, पी-एच०डी०, डी०लिट०,	
पारीक 'गोपेश' भिषगाचार्य)	२२९	विद्यावाचस्पति)	२६५
१०५- चिकित्सा-सेवा		१२८- लोकमान्य तिलककी देश सेवा	२६८
(वैद्य श्रीबालकृष्णजी गोस्वामी, एम०डी०ए०)	२३०	१२९- गुरु तेगबहादुरकी समाजसेवा	
१०६- रोगीकी सेवा—भगवान्की सेवा		( श्रीशिवकुमारजी गोयल)	२६९
( श्रीदीनानाथजी झुनझुनवाला )	२३२	१३०- रमाबाई रानडेकी समाज-सेवा	२७०
गोसेवा		१३१- समाज-सेवाका एक दृष्टान्त	
१०७- गोसेवा-धर्म	२३४	( श्रीप्रह्लादजी गोस्वामी, एम०ए०, 'मानसहंस')	२७२
१०८- गो-सेवासे ब्रह्मज्ञान		१३२- देशसेवाकी बलिवेदीपर तीन वीर क्षत्राणियाँ	
[सत्यकाम जाबालकी गोसेवा]	२३७	[कर्मदेवी, कमलावती और कर्णवतीकी शौर्यगाथा]	२७२
१०९- भगवान् श्रीकृष्णकी गो-सेवा	२३८	१३३– माता कस्तूरबाकी देश–सेवा	२७४
११०- महर्षि आपस्तम्बकी गोनिष्ठा	२३९	१३४- रानी वाक्पुष्टाकी प्रजासेवा	२७७
१११- गो–सेवाका शुभ परिणाम		१३५- साध्वी एलिजाबेथ फ्राईकी समाज-सेवा	२७८
[महाराज दिलीपकी गोसेवा]	२४२	१३६- सार्वजनिक सेवाके लिये माँगका अद्भुत त्याग	२८०
११२- गोभक्त लोटनकी गोसेवा		१३७- हागामुचीकी जनसेवा	२८०
( श्रीरघुनाथसिंहजी राणा)	588	१३८- डॉक्टर ऐनी बेसेंटकी भारत-सेवा	
११३- सन्त आसूदारामजीकी विलक्षण गोसेवा	588	(डॉ॰ मुहम्मद हाफ़िज सैयद, एम॰ए॰,	
११४- गोभक्त दरबार जीवावाला हरसुरवालाकी		पी-एच०डी०, डी०लिट०)	२८१
गोसेवा—कमलाबा	588	१३९- एक जापानी सैनिककी अद्भुत देशसेवा	२८३
११५– एक जर्मन महाशयकी गोसेवा		१४०- समाजके प्रति पक्षियोंका सेवाकार्य	
[प्रेषक—बी० श्रीमीठालालजी जोशी]	२४५	( श्रीउमेशप्रसादसिंहजी )	२८४
११६- आदर्श गोभक्त सेठ शिवलदासजीकी गोसेवा		१४१- रेडक्रॉस—एक समर्पित सेवा-संस्था	
[ श्रीदरबार साहब, भाई परसरामजी]	२४७	(डॉ० श्रीयमुनाप्रसादजी)	२८६
११७- रीवॉॅंनरेशकी गोसेवा	२४८	१४२- स्काउट-गाइड-आन्दोलन (डॉ० श्रीरामदत्तजी शर्मा,	
११८– जाम्भोजीकी गोसेवा ( श्रीमॉॅंगीलालजी बिश्नोई		एम० ए०, पी-एच० डी०, डी० लिट०,	
'अज्ञात', एम०ए०, बी०एड०)	२४९	साहित्याचार्य)	२८८

[ १६ ]

२९२

२९३

२९५

२९८

२९९

४०६

विषय

धर्मसेवा ..... १६८- सेवा परम धर्म है २८९ १४४- धर्मप्रचारके लिये जीवनकी आहति देनेवाले विद्यार्थी ..... १६९- जीवनका सच्चा सुख—नि:स्वार्थ सेवा २९१

१४५- गुरु गोविन्दसिंहकी धर्मसेवा ..... १४६- धर्मसेवा में अमर शहीद ये चार लाड़ले (आचार्य

श्रीसूर्यदत्त शास्त्री काव्यतीर्थ, विशारद) ..... १४७- धर्मव्रती बालक मुरलीमनोहर (भक्त श्रीरामशरणदासजी).....

१४८- धर्मकी बलिवेदीपर हकीकतरायका बलिदान

(श्रीमदनगोपालजी सिंहल)..... १४९- धर्मके दीवाने पिता-पुत्र.....

१५०- कुमारिल भट्टकी धर्मसेवा (पं० श्रीमायादत्तजी पाण्डेय शास्त्री, साहित्याचार्य, वेदतीर्थ, स्वामिभक्ति

वेदान्तकेसरी) ..... ३०१ ३०२ ३०३ 303

१५१ - संयमरायकी अपूर्व स्वामिभक्ति .....

विषय

१५२- दुर्गादासकी स्वामिभक्ति ..... १५३- वीर आयाकी स्वामिभक्ति ..... प्रकृतिसेवा एवं विश्वसेवा

१५४– सेवककी कर्तव्यनिष्ठा..... १५५- पन्ना धायको बलिदानी स्वामिभक्ति..... १५६- धरतीमाताकी सेवा (डॉ० श्रीब्रह्मानन्दजी).....

३०५ ३०६ वृक्षारोपण (श्रीवासुदेवकृष्णजी चतुर्वेदी, व्याकरण-

१५७- प्रकृति-सेवाका सहज एवं सुलभ साधन— पुराणेतिहासाचार्य, एम०ए०, साहित्यरत्न) ..... ७०६

उधर तू ही तू है] (श्रीकृष्णदत्तजी भट्ट).....

१५८- विश्व-सेवा ( श्रीशिवजी शास्त्री) ..... १५९- सच्चे मानवकी दुष्टि [जिधर देखता हूँ,

सेवातत्त्व-विमर्श-१६०- सेवातत्त्व-विमर्श (आचार्य श्रीशशिनाथजी झा) .......

१६२- सेवा शब्दका अर्थ-विस्तार

१६५- 'सेवा है आधार' [कविता]

१६३- 'जीवन-साफल्यका अमोघ उपाय—सेवा'

(डॉ० श्रीवेदप्रकाशजी शास्त्री, एम०ए०,

१६६- देहाध्यास (अहंकार)-को मिटानेका आसान

तरीका—सेवा (सन्त थानेदार ठाकुर साहिब

३१७ १६१- 'सेवा करो, प्रेम करो'

[स्वामी श्रीशिवानन्दजी महाराज] .....

(एकराट् पं० श्रीश्यामजीतजी दुबे 'आथर्वण') .......

पी-एच०डी०, डी०लिट०) .....

( श्रीजेठमलजी वर्मा 'नागी ') .....

श्रीरामसिंहजी भाटी) .....

१६४- सेवाधर्मको महिमा एवं प्रयोजन (श्रीगदाधरजी भट्ट) ......

388

३१०

१८२- मानवता..... १८३- निष्काम सेवा-शुश्रुषा : स्वत्व और महत्त्व

३२०

३२१

३२७

३३१

337

333

(डॉ० श्रीराजीवजी प्रचण्डिया, एम०ए० (संस्कृत), १८४- तीर्थजलको कभी दूषित न करे

एल-एल०बी०, पी-एच०डी०)..... (शाण्डिल्यस्मृति) ..... १८५- 'सेवा ही सिद्धियोग है' (प्रो॰ डॉ॰ श्रीश्यामजी शर्मा

वाशिष्ठ, एम०ए०, पी-एच०डी०).....

१८६- सेवाका स्वरूप [ श्रीविजयकृष्ण गोस्वामी] .....

पृष्ठ-संख्या

338

३३६

३३९

३४२

388

३४५

३४८

340

340

349

३६१

३६२

३६६

३६७

३७२

इ७इ

(डॉ० श्रीमती पुष्पारानीजी गर्ग) .....

364 ७८

३८१

327

३८४

रामहर्षणदासजी महाराज) [प्रेषक—पं० श्रीरामायणप्रसादजी गौतम] ..... १७७- शिवके अष्टरूप निरन्तर सेवा-संलग्न हैं (आचार्य श्रीरामिकशोरजी मिश्र) ..... १७८- सेवा-कर्तव्य और अधिकार

(प्रो॰ डॉ॰ श्रीसीतारामजी झा 'श्याम', डी॰लिट॰) ...

(डॉ० मधुजी पोद्दार, एम०डी०).....

(श्रीकृष्णचन्द्रजी टवाणी).....

मिश्र, एम०ए०, एम०एड०) .....

सिसौदिया 'रामचाकर') .....

(श्रीजगदीशचन्द्रजी मेहता) .....

(डॉ० श्रीमृत्युंजयकुमारजी त्रिपाठी).....

एम॰डी॰ (मेडिसीन)).....

( श्रीरवीन्द्रनाथजी गुरु) .....

(डॉ० श्रीरामचरणजी महेन्द्र, एम०ए०, पी-एच०डी०,

विद्याभूषण, दर्शनकेसरी).....

(दक्षस्मृति) .....

व्याकरणाचार्य, साहित्यरत्न).....

१८९- सेवासे शान्ति (साधु श्रीनवलरामजी शास्त्री)......

१९०- अष्टयाम सेवा-साधना (श्रीसियाशरणजी शास्त्री,

१७९- वृद्धाश्रम—एक अनुभूति (श्रीरामदयालजी).....

१८०- माताकी सेवा.....

१८१- सेवाके सुअवसर बार-बार नहीं आते!

१८७- नि:स्वार्थ सेवा—सर्वोत्कृष्ट उपासना

१८८- नौ आवश्यक कर्म

१७०- सेवा-धर्म ('मानस-केसरी' पं० श्रीबाल्मीकिप्रसादजी

१७१- 'सेवया किं न लभ्यते' ( श्रीयुत कुँवर सुरेन्द्रसिंहजी

१७२- सेवा करो, मेवा पाओ—सेवाके विभिन्न प्रकार

१७३- सेवाके लिये सामग्री नहीं, हृदयकी उदारता चाहिये

१७४- 'सेवा अस्माकं धर्मः' (श्रीकुलदीपजी उप्रेती) .......

१७५- सेवा क्यों, कैसे, कब और किसके लिये की जाय ?

(डॉ. (ले॰ जनरल) श्रीशिवरामजी मेहता,

१७६ - संत-सेवा [कविता] (पंचरसाचार्य श्रद्धेय स्वामी

विषय

पृष्ठ-संख्या

		७८६	२१४- भगवान्की मानसी सेवाका एक दृष्टान्त	
	रकी आधारशिला—सेवाधर्म		(विद्यावाचस्पति डॉ० श्री आर० वी० त्रिवेदी)	४४२
(डॉ० माला	द्वारी)	3८८	२१५- सेवासे जीवन कृतार्थ—दो अनुभूतियाँ	
१९३- सेवा अस्माकं	र धर्म:		(पं० श्रीरामजी लाल जोशी)	४४४
( श्री बी० एस	न० रावत ' चंचल ')	३८९	२१६- सेवामूर्ति 'नरभेराम' ( श्रीबालमुकुन्दजी दवे)	४४६
१९४- सेवा एवं मान	ाव धर्म		२१७- 'परहित सरिस धर्म नहिं भाई' [कविता]	
(डॉ० श्रीगिरि	रेजाशंकरजी शास्त्री)	३९२	(डॉ० श्रीजमुनाप्रसादजी बड़ैरिया)	४४८
१९५– 'सकाम और			सत्साहित्यमें सेवादर्शन—	
	प्रजी तिवारी 'नन्दनी')	३९५	२१८- वेदोंमें सेवोपदेश (स्वामी श्रीविवेकानन्दजी सरस्वती) .	४४९
१९६- सेवासर्वस्व (	डॉ० श्रीराधेश्यामजी अग्रवाल)	३९८	२१९- स्मृतिवाङ्मयमें सेवा-धर्मकी महिमा (डॉ० श्रीनिवासजी	
१९७- 'सेवा कल्प रि	विटप सम, सेइहिं अवसि सुजान'		आचार्य, एम०ए०, एम०एड०, पी-एच०डी०)	४५०
	वेदप्रकाशजी मिश्र, शोधछात्र)	३९९	२२०- नीतिमंजरीके सेवापरक आख्यान ( डॉ० श्रीबसन्तबल्लभजी	
•	मा एवं सेवाका स्वरूप		भट्ट, एम०ए०, पी-एच०डी०)	४५४
	कमचन्दजी प्रजापित)	४०२	२२१- सेवा धर्मका पावन अधिष्ठान—श्रीरामचरितमानस	
	ı—प्रेरक प्रसंग—		(डॉ० श्रीराधानन्दजी सिंह, एम० ए०, पी-एच० डी०,	
	सेवक [चार दृष्टान्त]		एल० एल० बी०, बी० एड०)	४५८
	गोकजी पण्ड्या)	४०५	२२२- गौतमीय तन्त्रोक्त भगवत्सेवाके पंच प्रकार	
२००- सेवाके दो अ	-, -		(पं० श्रीकृष्णानन्दजी उपाध्याय 'किशन महाराज')	४६२
	शर्माजी आचार्य)	४११	२२३- बिश्नोई-सम्प्रदायमें सेवाधर्मकी महिमा	
२०१- भगवान्द्वारा भ			(श्रीविनोद जम्भदासजी करवासड़ा)	४६४
	येन्दुजी शर्मा)	४१३	२२४- वैष्णव-सम्प्रदायमें अष्टयामसेवा	
	–जहाँ काँटे भी फूल बनते हैं		( श्रीसुधाजी त्रिपाठी )	४६७
•	लजी केडिया)	४१६	२२५- श्रीमद्भागवतमें सेवा-दर्शन (पं० श्रीव्यासनन्दनजी ओझा)	४७०
२०३- मैंने देखीं कुर	9		२२६- चरकसंहितामें वर्णित सेवाका स्वरूप	
	श्रीचन्दजी पंजवानी)	४१८	(प्रो॰ श्रीअनूपकुमारजी गक्खड़)	४७४
२०४- सेवासे सम्ब			२२७- कालिदासके काव्योंमें सेवाभाव	
(श्रीशिवकुमा			( श्रीशिवनाथजी पाण्डेय शास्त्री, एम० ए० )	४७६
=	धर्मेन्द्रजी गोयल]	४१९	२२८- मराठी सन्तोंका सेवाभाव	
	। एक मनोरम दृष्टान्त		(डॉ॰ श्रीभीमाशंकरजी देशपाण्डे)	४७९
	मुदेवलालजी दास, पी-एच०डी०)	४२२	२२९- स्वामी श्रीनितानन्दजी और उनके सेवोपदेश	
	मिलैं' [तीन प्रेरक प्रसंग]		(महन्त श्रीराजेन्द्रदासजी महाराज)	४८३
	० श्रीउदयनाथजी झा 'अशोक',		२३०- पद-रत्नाकरमें सेवा-धर्म	
• • •	ि लिट॰)	४२४	(विद्यावाचस्पिति डॉ॰ श्रीदिनेशचन्द्रजी उपाध्याय,	
	त (श्रीअमृतलालजी गुप्त)	४२५	एम० एस० सी०, पी-एच० डी०)	४८६
	रन बऊआ (श्रीरामस्वरूपजी पाण्डेय)	४२७	२३१ - सेवाभावी भक्तोंका स्वरूप [ श्रीमद्भागवत]	४८८
	ोन अनुभव (डॉ॰ जी॰डी॰ बारचे,		सेवा और् आत्मोद्धार—	
	॰जी॰डी॰टी॰ई॰, पी-एच॰डी॰)	४३०	२३२- सेवाके मार्गसे मुक्ति	
	त्र चार दृष्टान्त (श्रीनागानन्दजी)	४३२	(ब्रह्मलीन श्रीमगनलाल हरिभाईजी व्यास)	४८९
२११- सेवा-धर्मके			२३३- परमार्थप्राप्तिका सोपान—सेवा	
	नकृष्णजी कुमावत)	४३५	(आचार्य श्रीगोविन्दरामजी शर्मा)	४९१
२१२- सेवासम्बन्धी	<b>5</b> 5.		२३४- नि:स्वार्थसेवा—सर्वोत्कृष्ट उपासना	
	गादजी कोरी)	४३९	(श्रीरामजीलाल गौतमजी पटवारी)	४९२
२१३- मानवसेवाके			२३५- सेवाभावसे भगवत्प्राप्ति (दासानुदास श्रीराघवदासजी)	४९४
Hindustra	Discord ਤੋਵਾਂver https://dsc.g	g <mark>ģ</mark> /åh	aima ना लिक्किए भागानि LOVE BY Avinash	1/ <b>S</b> H
	·	<del>-</del>	<b>&gt;+≻</b> -'	

# चित्र-सूची

#### (रंगीन चित्र)

विषय

६- [क] माता-पिताके सच्चे सेवक-श्रवणकुमार.....७

७- सच्ची सेवाका स्वरूप—सर्वत्र भगवद्दर्शन.....८

४५- मालवीयजीकी जीवदया.....

४६- दयासागर विद्यासागरद्वारा दुखी मजदूरकी सेवा.......

४७- नागमहाशयका सेवा-भाव .....

४८- गाँधीजीकी कृष्ठसेवा .....

४९- एलिजाबेथकी सेवानिष्ठा .....

५०- दिलीपपत्नी सुदक्षिणाकी गोसेवा .....

५१- लोकमान्य तिलक.....

५२- माता कस्तूरबा.....

५३- भीष्मद्वारा हंसोंको इच्छामृत्युकी बात बताना .........

५४- अमर शहीद फतेहसिंह और जोरावरसिंह .....

५५- बलिदानी हकीकतराय .....

५६- तुषाग्निपर बैठे कुमारिल भट्ट .....

५७- संयमरायको अद्भुत स्वामिभक्ति .....

५८- स्वामिभक्तिको प्रतिमूर्ति पन्ना धाय .....

५९- बमोंके प्रहारसे नागासाकी और हिरोशिमाका विध्वंस..

६०- गुरु परशुरामद्वारा कर्णकी भर्त्सना .....

६१- ब्रह्माजीद्वारा देव, दानव तथा मानवको 'द' का उपदेश

६२- पतिव्रता शाण्डिलीद्वारा सूर्योदयको रोक देना ..........

६३- नागकन्या जरत्कारु और उसके पति महर्षि जरत्कारु .

६४- भगवानुका खम्भेमें स्वयं बँधने आ जाना .....

६५- भगवानुद्वारा गोवर्धन-धारण .....

६६- कामदेवद्वारा शिवजीपर पुष्पबाण छोड़ना .....

६७- नामदेवका कृत्तेमें नारायण-दर्शन .....

६८- सन्त श्रीज्ञानेश्वरजी.....

६९- सन्त श्रीएकनाथजी.....

७०- सन्त श्रीतुकारामजी .....

७१- समर्थ गुरु रामदास.....

७२- स्वामी श्रीनितानन्दजी महाराज.....

८- [क] अतिथि-सेवासे राजर्षि रन्तिदेवको

देवदर्शन

[ख] राजर्षि दिलीपकी गोसेवा.....७

पृष्ठ-संख्या

१- भगवत्सेवाके विविध रूप ......आवरण-पृष्ठ

२- सेवामूर्ति श्रीभरतजीद्वारा चरणपादुकाकी सेवा...... ३

३- विश्वके रक्षणके लिये भगवान् शिवका विषपान ...... ४

४- श्रीकृष्ण एवं बलरामद्वारा माता-पिताकी सेवा ...... ५

५- [क] भक्तिमती शबरीकी अतिथिसेवा

् । [ख] मनकोजी बोधलाद्वारा अतिथिरूपमें आये श्रीलक्ष्मीनारायणकी सेवा	F	[ख] रोगीसेवा—भगवत्सेवा ९- सेवाके आदर्श प्रतिमान श्रीहनुमान्जी	
	_	चित्र)	\
१- गुरुसेवा	२५	३७- धर्मराजद्वारा सत्यवान्को जीवनदान देना	१९५
२- भगवत्सेवा	२७	३८- सुकन्याद्वारा बाँबीके छिद्रमें काँटे डालना	१९७
३- जगत्की रक्षाके लिये भगवान् शिवका विषपान	<b>३</b> २	३९- सुकन्याका वृद्ध पति च्यवनकी सेवा करना	१९८
४- भगवान् शिवद्वारा गोस्तुति	38	४०- अशिवनीकुमारोंसे पतिदर्शनकी प्रार्थना	१९९
५- ब्रह्माजीके शरीरसे मनु-शतरूपाका प्राकट्य	४४	४१- सुकन्याद्वारा पिता शर्यातिको पतिका परिचय देना	१९९
६- मनु-शतरूपाको सशक्तिक भगवान्के दर्शन	४४	४२- केवटवेषधारी भगवान् और सतीका वार्तालाप	२०३
७- महर्षि कर्दम एवं देवहूति	48	४३- सती भोगवतीकी पतिसेवा	२०४
८- कर्दमकी संकल्पशक्तिसे दिव्य विमानका प्राकट्य	५१	४४- भामतीकी पतिसेवा	२०५

42

64

८६

१११

१३४

१३६

१३७

१३९

१३९

१४२

१५०

१५१

१६२

१६९

१७०

१७१

१७२

१७३

१७५

१७७

१८०

१८२

१८५

१८८

१९०

१९२

१९३

१९४

विषय

९- कर्दम एवं देवहृतिका संवाद ..... १०- ब्राह्मण कौशिककी क्रोधपूर्ण दृष्टिसे बगुलीका गिरना ...... ११- कौशिकद्वारा धर्मव्याधके माता-पिताकी भक्ति देखना.. १२- कुलशेखर आलवार..... १३- मुनि सुतीक्ष्णपर भगवान्की कृपा.....

१४- निषादराज गुहकी श्रीराम-सेवा ..... १५- भगवान्की सेवामें गुहका रात्रि-जागरण..... १६- जटायु और रावणका युद्ध..... १७- जटायुका उद्धार .....

१८- माताद्वारा सालबेगको भगवत्सेवाका उपदेश ..... १९- संत-सेवाका साक्षात् फल .....

३२- सेवाभावी स्वामी श्रीटेऊँरामजी .....

३३- सावित्रीका नारदको सत्यवानुके विषयमें बताना.......

३४- सावित्रीद्वारा स्वयं भी वन चलनेका अनरोध करना .....

३५- सावित्रीके समक्ष कालरूप धर्मराजका प्राकट्य .......

३६- सावित्रीद्वारा धर्मराजसे वर माँगना.....

२०- पीपा-दम्पतीकी संतसेवाका प्रभाव.....

२१- मातृहृदय द्रौपदीकी उदारता ..... २२- पितृभक्त सोमशर्मा .....

२३- पितृभक्त खलासी-बालक...... २४- माता-पिताके भक्त श्रवणकुमार.....

२५- दशरथद्वारा श्रवणकुमारकी सेवाके फलको देखना ..... २६- राजा शान्तनु और निषादराजका संवाद ..... २७- उपमन्युकी गुरुसेवा .....

२८- शिवाजीद्वारा सिंहिनीका दूध प्राप्त करना..... २९- श्रीमुद्गलद्वारा दुर्वासाजीका आतिथ्य.....

३०- व्याधद्वारा अतिथिसेवी कपोतदम्पतीकी सद्गति देखना

३१- देवी श्रुतावतीकी अतिथि-सेवा .....

४८०

४८२

४८३

**3**23

३२९ ३३१

२१३

२१५

२१६

२२०

२२३

२४२

२६८

२७४

२८५

२९४

२९८

३०२

३०२

३०५

३०६

पृष्ठ-संख्या

लक्ष्यको प्राप्त करे।

### सेवामय जीवन—एक व्यावहारिक दर्शन।

सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः। होगी-निष्काम उपासना होगी। सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद्दुःखभाग्भवेत्॥ इस प्रकार कल्याणकामी मनुष्यकी पूरी जीवनचर्या इस श्लोकका भाव यह है कि चराचर जगत्के सेवामय हो जायगी। श्रीमद्भगवद्गीतामें भगवान् श्रीकृष्णने इसी आशयसे 'सर्वभूतिहते रताः' कहकर यह दर्शाया सभी प्राणी सुखी हों, किसीको भी कष्ट न हो, सभी कि जो व्यक्ति सम्पूर्ण प्राणियोंके हितमें रत है अर्थात् स्वस्थ हों, सभीका मंगल हो, सबका कल्याण हो और कोई भी दु:खका भागी न बने-ये विचार कितने सुन्दर सबका हित करता है, वह मुझे प्राप्त करता है, परंतु यह प्राप्ति उसीको होती है, जिसके मन और इन्द्रियाँ वशमें हैं और शुभ हैं, परंतु सबको सुखी करना क्या हमारे हैं और बुद्धि सबके प्रति समताका भाव रखती है— सन्नियम्येन्द्रियग्रामं सर्वत्र समबुद्धयः। ते प्राप्नुवन्ति मामेव सर्वभूतिहते रताः॥ मानव-जीवन भगवत्कृपासे प्राप्त होता है। प्राणी

वशकी बात है? वस्तुत: ये मनके सुन्दर भाव हैं? वास्तवमें यदि ये भाव हमारी अन्तरात्माके हैं तो हमें अपनी सामर्थ्य-शक्ति और योग्यताके अनुसार इन्हें कार्यरूपमें परिणत करनेके लिये तत्पर होना पडेगा। ८४ लाख योनियोंमें भटकनेके बाद अन्तमें भगवदनुग्रहसे मनुष्य-जीवन प्राप्त करता है। मानव-जीवनका एकमात्र उद्देश्य है—भगवत्प्राप्ति करना, अपना कल्याण करना, जन्म-मरणके बन्धनसे मुक्त होना-ये तीनों एक ही बात हैं। इसे प्राप्त करनेके लिये परमात्म-प्रभुने बल, बुद्धि, विवेक और सामर्थ्य भी मानवको प्रदान किया है। अन्य किसी भी योनिमें यह सामर्थ्य नहीं है। अन्य योनियाँ तो केवल भोगयोनियाँ हैं, जहाँ केवल भोग भोगा जाता है। मानवमात्रको यह क्षमता प्राप्त है कि वह सेवा, तप, दान, परोपकार, आराधना आदि सब पुण्यप्रद कार्योंको

व्यक्ति जो कुछ भी करेगा, वह सब उसकी निष्काम सेवा

करे। सम्पन्नकर अपनी साधनासे भगवत्कृपा प्राप्तकर अपने दूसरोंके द्वारा किये जिस बरतावको अपने लिये नहीं अपने ऋषि-महर्षि, सन्त एवं अपने शास्त्रोंने एक महान् उद्देश्य प्रस्तुत किया—'सर्वे भवन्तु सुखिनः...' सभी सुखी होंगे तो हम भी सुखी हो जायँगे, केवल अपने सुखके लिये प्रयत्न करना एक प्रकारका स्वार्थ है और सबके सुखके लिये प्रयास करना परमार्थ है। सबको सुखी करना अपने हाथकी बात नहीं है, परंतु फिर भी यह पवित्र भाव अपने जीवनका उद्देश्य बन जाय तो

(गीता १२।४) मुझ सच्चिदानन्दस्वरूप सर्वेश्वरको वह योगी परमश्रेष्ठ मान्य है, जो सबके हितकी भावनासे सबके प्रति सुखप्रद व्यवहार करता है, किसीके अहितकी भावनासे किसीको दु:ख नहीं देता। 'आत्मनः प्रतिकृलानि परेषां न समाचरेत्'—इसका आशय है कि जो आचरण स्वयंको प्रतिकूल लगता हो, वह दूसरेके प्रति कभी न पद्मपुराण एवं विष्णुधर्मोत्तरपुराणका एक वचन श्रूयतां धर्मसर्वस्वं श्रुत्वा चैतत्प्रधार्यताम्।

आत्मनः प्रतिकूलानि परेषां न समाचरेत्॥

(पद्मपुराण सृष्टि० १९।३५५, विष्णुधर्मो० ३।२५३।४४)

'धर्मका सार सुने और सुनकर इसे धारण करे—

चाहते, उसे दूसरोंके प्रति भी नहीं करना चाहिये।' हिंसा, असत्य, चोरी, व्यभिचार आदि बरताव अपने लिये अप्रिय हैं; वे दूसरोंके लिये भी प्रिय नहीं हो सकते। इसी प्रकार मन, वाणी और कर्मके द्वारा सभी प्राणियोंके साथ कभी द्रोह न करना अर्थात् मनोनिग्रह और इन्द्रियसंयमसे समन्वित रहना तथा दया और दान

करनेमें प्रवृत्त रहना—यह श्रेष्ठ पुरुषोंका सनातन धर्म है।

\* राम सदा सेवक रुचि राखी \* िसेवा-ही तो है। जन्मनेके बाद शिशुके पालन-पोषणमें अद्रोहः सर्वभूतेषु कर्मणा मनसा गिरा। माताको कितना श्रम करना पडता है, यह सर्वविदित है। अनुग्रहश्च दानं च सतां धर्मः सनातनः॥ यह माताके द्वारा स्वाभाविक सेवा है, जिसकी प्रेरणा (महा० शान्ति० १६२।२१) इस प्रकारकी जीवनचर्या जिस व्यक्तिकी होगी, माताको स्वत: प्रकृतिसे प्राप्त होती है। शिशुके कुछ बड़े वह व्यक्ति 'सर्वभूतहिते रताः'—सम्पूर्ण प्राणियोंकी होनेपर माता-पिताको उसकी शिक्षा-दीक्षाकी व्यवस्था सेवामें संलग्न माना जायगा। करनी पडती है। गुरुजनोंके द्वारा उसे शिक्षा एवं विद्या प्रत्येक व्यक्ति सुख और शान्ति चाहता है, परंतु प्रदान की जाती है, जिससे वह पढ़-लिखकर योग्य दूसरोंको दु:ख देकर यह कदाचित् सम्भव नहीं है, दु:ख बनता है—ये सब स्वाभाविक सेवाएँ हैं, जो अपने दोगे तो दु:ख मिलेगा, सुख दोगे तो सुख निश्चितरूपसे शास्त्रोंद्वारा माता-पिता एवं गुरुजनोंके लिये कर्तव्य-मिलेगा, एक उदाहरणसे यह बात और स्पष्ट हो रूपमें भी निर्धारित हैं। सकेगी। संसारके समस्त प्राणी ईश्वरके अंश हैं अर्थात् व्यक्तिका विद्याध्ययन, शिक्षा-दीक्षा जब पूरी हो भगवत्स्वरूप ही हैं, इसलिये सबकी सेवा भगवान्की जाती है और वह युवावस्थाको प्राप्त कर लेता है तो उसके भी कर्तव्य सेवारूपमें निर्धारित हो जाते हैं। अपने सेवा है। एक दृष्टान्त है बिम्ब और प्रतिबिम्बका। मनुष्य बिम्ब है और दर्पणमें उसका प्रतिबिम्ब दिखता है, यहाँ कर्तव्यका निर्वाह करना और उनका पालन करना यह मनुष्यरूपी बिम्ब परमात्माका प्रतीक है और दर्पणमें सेवाका प्रथम सोपान है। माता-पिताका पुत्रके प्रति, दिखनेवाला प्रतिबिम्ब जीवका प्रतीक है, प्रतिबिम्बका पुत्रका माता-पिताके प्रति, गुरुका शिष्यके प्रति, शिष्यका शृंगार करना है तो बिम्बका शृंगार करना पड़ेगा। गुरुके प्रति, स्वामीका सेवकके प्रति एवं सेवकका बिम्बको हम जो वस्तु प्रदान करेंगे, वह वस्तु दर्पणमें स्वामीके प्रति जो कर्तव्य है, उसका पालन करना—यह प्रतिबिम्बको स्वतः प्राप्त हो जायगी। बिम्बको लाल प्रथम और अनिवार्य सेवा है। चादर ओढ़ायेंगे तो प्रतिबिम्बमें स्वतः लाल चादर आ सेवा सृष्टि-संचालनका वह तत्त्व है, जिसके जायगी। इस बातसे यह सिद्ध होता है कि परमात्म-माध्यमसे ही परमात्माकी सृष्टि सुव्यवस्थितरूपसे प्रभुको जो कुछ अर्पण करेंगे, वह अर्पण करनेवाले संचालित हो रही है। छोटोंका अपने बड़ोंके प्रति जो जीवको स्वतः प्राप्त हो जायगा। इस प्रकार ईश्वर-उपकारी भाव होता है, उसकी जननी श्रद्धा है और स्वरूप सम्पूर्ण प्राणियोंकी सेवा करनेका फल (लाभ) बड़ोंका छोटोंके प्रति जो उपकारी भाव होता है, सेवा करनेवाले जीवको निश्चित मिलता है। यद्यपि उसे उसका जनक वात्सल्यभाव है। बिना वात्सल्यके कोई प्राणी अपने बच्चोंका लालन-पालन नहीं कर सकता, फलको कोई अपेक्षा नहीं रखनी चाहिये, तभी निष्काम सेवा होगी। वात्सल्य और श्रद्धा जब अपनी परिमित सीमाका अतिक्रमणकर विश्वके प्रत्येक प्राणीके उपकारके लिये वस्तुत: सेवाकी शृंखला जन्मके पूर्वसे प्रारम्भ हो जाती है। जब जीव गर्भमें रहता है तो माताको उसकी अभिव्यक्त होते हैं तो ये वात्सल्य और श्रद्धा ही रक्षाके लिये सावधानी रखनी पड़ती है, भोजन आदिमें लोकमें 'सेवा' शब्दद्वारा कहे जाते हैं। कई प्रकारके परहेज रखने पड़ते हैं। सुबुद्ध माताएँ मनुस्मृतिमें आचार्य मनुने कहा है कि घरमें वृद्ध गर्भस्थ शिशुको सुन्दर संस्कार प्रदान करनेके लिये माता-पिता, गुरुजन एवं अपनेसे बड़ोंकी सेवा-शुश्रुषा सत्साहित्य एवं धार्मिक पुस्तकोंका स्वाध्याय एवं श्रवण करनेसे चार बातोंकी प्राप्ति होती है। ये चार बातें हैं— भी करती हैं; यह सब एक प्रकारसे गर्भस्थ शिशुकी सेवा आयु, विद्या, यश और बल—

अभिवादनशीलस्य नित्यं वृद्धोपसेविनः। है। किसीके लिये कहीं कोई निषेध नहीं, यहाँतक कि चत्वारि तस्य वर्धन्ते आयुर्विद्या यशो बलम्॥ परमात्म-प्रभुद्वारा रचित यह स्थावर सृष्टि भी सेवाका (मनुस्मृति २।१२१) उपदेश देती है, सेवाकी प्रेरणा देती है। भुवनभास्कर

st सेवामय जीवन $oldsymbol{-}$ एक व्यावहारिक दर्शनst

भव।' अर्थात् माताकी सेवा करे, पिताकी सेवा करे,

इन चार वस्तुओंको प्राप्त करनेके लिये सारा संसार

माता-पिता, आचार्य, अतिथिकी सेवाका निर्देश

लालायित है, पर इन्हें प्राप्त करनेकी विधि कितनी सरल

शास्त्रोंने इस रूपमें स्पष्टरूपसे किया है—'मात्देवो

भव, पितृदेवो भव, आचार्यदेवो भव, अतिथिदेवो

अङ्क ]

और मर्यादित है।



आचार्य-गुरुकी सेवा करे, आगत अतिथिकी सेवा करे। कहते हैं माताकी सेवासे व्यक्तिकी सभी कामनाएँ पूरी

हो जाती हैं। पिताकी सेवासे सब देवता प्रसन्न हो जाते हैं और उनके प्रसन्न होनेसे अलभ्य कुछ नहीं रह जाता।

अतिथिकी सेवा साक्षात् श्रीमन्नारायणकी सेवा है।

सेवासे यद्यपि भौतिक कामनाओंकी भी पूर्ति होती है, परंतु वास्तविक कल्याण भगवत्प्राप्ति और जीवन्मुक्ति तो निष्कामसेवासे ही होती है। वास्तवमें उस परमतत्त्वतक

ता निष्कामसवास हा होता है। वस्तवम उस परमतत्वतक पहुँचनेके लिये सेवा एक महत्त्वपूर्ण सोपान है। सेवा वह राजमार्ग है, जिसपर चलकर विद्वान् मनीषीसे लेकर भेदभावके सर्वत्र वृष्टि करते हैं, यहाँतक कि पशु-योनिमें गौमाताद्वारा भी अद्भुत सेवा प्राप्त होती है—दूध, दही, गोमूत्र, गोमय तथा अपने शरीरके अवयवोंसे वे मानवमात्रकी

सेवा करती हैं, जबिक मनुष्यको एतद् अपेक्षा अधिक बुद्धि, सामर्थ्य और विवेक प्राप्त है। उसे अनेक प्रकारसे सेवाकर

अपने जीवनको सफल बनानेकी योग्यता प्राप्त है।

भगवान् सूर्य अपने प्रकाश एवं ऊष्मा-दानसे समस्त भुवनोंकी अहर्निश सेवा करते रहते हैं, चन्द्रदेव अपनी

शीतल एवं स्वच्छ चाँदनी बिखेरकर सबको आह्लादित करते रहते हैं, निदयाँ अपने शीतल एवं मधुर जलसे

सबको आप्लावित करती हैं, वृक्ष-वनस्पतियाँ अपने मधुर

फलों तथा छायासे सबको सुख पहुँचाते हैं, पृथ्वी अन्न

तथा ओषिधयोंसे सबका भरण-पोषण करती है, वायु सबको गति एवं जीवन प्रदान करती है, मेघ बिना किसी

सामान्यतः सेवाके चार साधन प्रत्येक मनुष्यको प्राप्त हैं—तन-मन-धन और वाणी। दूसरे शब्दोंमें यह कहा जा सकता है कि मन, वाणी, शरीर और धनके द्वारा सम्पूर्ण प्राणियोंके हितमें रत रहकर उन्हें सुख पहुँचानेकी चेष्टा करना सेवाका साधन है। १. तनकी सेवा—स्वयं अपने शरीरसे दूसरोंकी

सेवा करनेका विशेष महत्त्व है। शरीरद्वारा अपने माता-पिता एवं गुरुजनोंकी सेवा—उनके चरण दबाकर, उनकी थकान मिटाकर उन्हें प्रसन्न करना, रुग्णावस्थामें मल-मूत्रादितककी सेवा करना। किसी भी रुग्ण एवं विशेष

होती अस्वस्थ व्यक्तिको अपनी शारीरिक सेवा प्रदानकर सुख त्मुक्ति पहुँचानेका प्रयास करना, प्यासेको पानी, भूखेको रोटी त्वतक देना, रक्तदान, अपंग-निर्धन एवं विधवाओंकी मदद वा वह करना, निरक्षरोंको पढ़ाना, सत्साहित्यका प्रचार-प्रसार

राजमार्ग है, जिसपर चलकर विद्वान् मनीषीसे लेकर करना, मरणासन्न मनुष्यको गीता–रामायण आदिका पाठ सामान्यजनतक सभी अपने–अपने जीवन–लक्ष्यतक पहुँच या भगवन्नाम सुनाना इत्यादि तनकी सेवाके अन्तर्गत हैं। Hinduism Discord Server https://dsc.og/dharma h MADE WITH LOVE BY Avinash/Sha सकत है। इस पथपर चलनके लिये सभाका अधिकार

२६ * राम सदा सेव	क रुचि राखी * [ सेवा-
<u></u>	************************************
अन्तकालमें मुझको स्मरण करता हुआ शरीर त्यागता है,	<b>गोदान</b> —किसी भी पुण्य कार्यकी सफलताके
वह मेरे स्वरूपको साक्षात् प्राप्त हो जाता है, इसमें संशय	लिये तथा पापादिकी निवृत्तिके लिये गोदान करना तथा
नहीं है—	गायोंके भरण-पोषणहेतु चारे आदिकी व्यवस्था करना।
अन्तकाले च मामेव स्मरन्मुक्त्वा कलेवरम्।	<b>कणदान</b> —कबूतर आदि पक्षियोंको चुगनेके लिये
यः प्रयाति स मद्भावं याति नास्त्यत्र संशयः॥	अन्नकण विकीर्ण करना, मछलियोंको आटेकी गोलियाँ
(गीता ८।५)	देना आदि।
इस प्रकार प्रयत्न करनेसे यदि एक मनुष्यका	<b>पंचबलि एवं बलिवैश्वदेव—</b> अपने शास्त्रोंमें
कल्याण भी किसीके द्वारा हो जाता है तो उसका जन्म	बलिवैश्वदेव एवं पंचबलिका विधान है, जिसे प्रतिदिन
सफल मानना चाहिये। यह एक प्रकारकी परमसेवा है।	करना चाहिये। इसके द्वारा भावनात्मकरूपसे त्रिलोकके
<b>२. धनकी सेवा</b> —धनकी सेवाद्वारा नि:स्वार्थ	सम्पूर्ण देवों, गन्धर्वों तथा प्राणियोंकी तृप्ति हो जाती है।
भावसे कुँआ, बावड़ी, तालाब, देवालय, धर्मशाला,	पंचबलिमें गोग्रास, श्वान (कुत्ता)-का ग्रास, काक
विद्यालय, अनाथालय, चिकित्सालय एवं गोशाला आदि	(कौवा)-का ग्रास, कीट, पतंग, पिपीलिका (चींटी)-
बनवाना तथा उनका जीर्णोद्धार कराना और छायादार	के ग्रास तथा अतिथिका भाग निकालनेकी विधि है। इस
एवं फलदार वृक्ष लगाना तथा मार्ग आदि बनवाना—ये	प्रकार सम्पूर्ण चराचर जगत्के प्राणियोंको संतृप्त करके
सभी लोकोपकारी सेवा एवं जनिहतके कार्य करना—	भोजन करना चाहिये।
बनवाना पूर्तधर्म कहलाता है।	श्रीमद्भगवद्गीतामें भगवान्ने कहा है—
धनसेवाके अन्तर्गत सेवाधर्ममें दान एवं दयाका भी	यज्ञशिष्टाशिनः सन्तो मुच्यन्ते सर्विकल्बिषैः।
विशेष महत्त्व है। श्रीमद्भगवद्गीतामें स्पष्ट शब्दोंमें कहा	भुञ्जते ते त्वघं पापा ये पचन्त्यात्मकारणात्॥
है—	(गीता ३।१३)
यज्ञदानतपःकर्म न त्याज्यं कार्यमेव तत्।	यज्ञसे बचे हुए अन्नको खानेवाले श्रेष्ठ पुरुष सब
यज्ञो दानं तपश्चैव पावनानि मनीषिणाम्॥	पापोंसे मुक्त हो जाते हैं और जो पापीलोग अपना शरीर-
(गीता १८।५)	पोषण करनेके लिये ही अन्न पकाते हैं, वे तो पापको
अर्थात् यज्ञ, दान और तप—इन तीन कर्मोंको कभी	ही खाते हैं। अत: बलिवैश्वदेव तथा पंचबलि परिवारके
किसी भी अवस्थामें त्यागना नहीं चाहिये; क्योंकि ये	किसी एक व्यक्तिको प्रतिदिन करना चाहिये।
तीनों मनीषियोंको भी पवित्र करनेवाले हैं।	विद्यादान—बालकोंको सुशिक्षित श्रेष्ठ नागरिक
सेवारूप दानके कई रूप हैं। इन्हें श्रद्धापूर्वक	बनानेके लिये विद्यालय, पुस्तकालय आदि स्थापित
अपनाकर व्यक्ति आत्मकल्याण कर सकता है—	करना। भारतीय संस्कृतिके उन्नयनके लिये वेदविद्यालय
<b>अन्नदान</b> —भूखे लोगोंको भोजन कराना, अन्न-	तथा संस्कृतविद्यालय स्थापित करना। निर्धन छात्रोंकी
क्षेत्रकी स्थापना करना इत्यादि।	आर्थिक सहायता करना तथा छात्रवृत्ति एवं पुस्तकालय
जलदान—प्यासोंको जल पिलाना, कूप, वापी,	आदिकी व्यवस्था करना। <b>'सर्वेषामेवदानानां विद्यादानं</b>
तड़ाग बनवाना, प्याऊ लगवाना आदि।	विशिष्यते।' सम्पूर्ण दानोंमें विद्यादानकी विशेषता है।
<b>भूमिदान</b> —गौओंके लिये गोचर-भूमि छोड़ना	दया—किसी भी निर्धन एवं रुग्ण और अपंग
तथा विद्यालय एवं अस्पतालके लिये भूमिका दान	अथवा अभावग्रस्त व्यक्तिको शारीरिक एवं आर्थिक
करना।	सेवा प्रदानकर सुख पहुँचानेका प्रयास करना। रोगी

\* सेवामय जीवन—एक व्यावहारिक दर्शन \* अङ्क ] 'सेवा' शब्द अत्यन्त व्यापक है, इसमें प्राणिमात्रकी जाति-कुल-शील-मित्र-शत्रुके समस्त बन्धनोंसे ऊपर होता है, अत: उचित औषधि एवं पथ्यका पालन करते सेवासे लेकर परमात्माकी पूजातक सेवा कहलाती है। हुए निष्ठापूर्वक नि:स्वार्थ भावसे की गयी रोगी-सेवा मानवसेवाके साथ-साथ भगवत्सेवाका भी विशेष महत्त्व चित्तको अपूर्व आनन्द देती है। है, इसके अन्तर्गत जिह्वासे भगवन्नाम-जप तथा कीर्तन, **३. वाणीकी सेवा**—सत्य, प्रिय लगनेवाले हितकारी कानोंसे कथा-श्रवण, नेत्रोंसे शोभाधाम प्रभु-विग्रहकी वचनोंके द्वारा दूसरोंकी सेवा करना। किसीके मनमें क्षोभ छविको निहारने तथा निहारते हुए नेत्रमार्गसे हृदयमें उस उत्पन्न करनेवाले वचन न बोलना। ऐसी वाणी बोलना, छविको स्थापित करना। हाथोंद्वारा श्रीविग्रहकी चरणसेवा जिससे सुननेवालेको सुख मिले, यह एक प्रकारकी करना, अंगराग लगाना, माला गूँथकर श्रीविग्रहका शृंगार वाचिक सेवा है— ऐसी वाणी बोलिये मन का आपा खोय। औरन को शीतल करे आपहु शीतल होय॥ **मानसिक सेवा**—मानसिक लोककल्याणके लिये सच्चे मनसे प्रार्थना एवं सद्भावना निहित है। दूसरोंके प्रति सद्भाव रखना तथा सबका हित चिन्तन करना अपने और दूसरेके मनको प्रसन्न रखना सौम्यभाव (कोमल स्वभाव)-से रहना, अधिकतर मौन रहते हुए स्वयंपर (मन और सब इन्द्रियोंपर) नियन्त्रण रखना तथा सबके प्रति शुद्ध भाव रखना। जिस व्यक्तिके पास सेवाके अन्य साधन उपलब्ध न हों, वह मानसिक रूपसे सम्पूर्ण प्राणियोंका हित-चिन्तन करता हुआ तथा दुखी प्राणियोंके कष्ट-निवारणकी जो प्रार्थना करता है करना, पैरोंद्वारा उनके दिव्य देशों और तीर्थोंकी यात्रा तो यह मानसिक भावनात्मक सेवा है। भावनात्मक करना। अपने शरीरसे नाचकर प्रभुको रिझाना आदि सेवासे तात्पर्य है, जिसमें प्राणिमात्रके हितका भाव प्रधान कार्य आते हैं—यह भी भगवत्-सेवाका एक स्वरूप है। रहे; दुखी प्राणीके दु:खमें सहानुभूति प्रकट करना तथा अपने शास्त्रोंमें भगवान्की मानसिक सेवा-पूजाका विशेष उसके सुखमें सुखी होना भावनात्मक सेवा कहलाती है। महत्त्व बताया गया है। भगवान्की विशिष्ट सेवाके जैसे कमल जलमें रहता हुआ भी अनासक्त रहता हुआ साधन बाह्य रूपसे जुटाना सम्भव नहीं हो सकता, उनकी खिला रहता है, ऐसे ही हमें संसारमें अनासक्त रहते हुए

सबकी भलाई और कल्याणका भाव रखना चाहिये।

नहीं तथा मुक्तिकी भी इच्छा नहीं। एकमात्र इच्छा यही

एक भक्त सेवकका कितना सुन्दर भाव है—

समाप्त हो जाय।

सेवा-पूजाके दिव्य साधन मानसिक रूपसे ही प्रस्तुत

किये जा सकते हैं। शास्त्रानुसार यह भी मान्यता है कि

मानसिक सेवा-पूजाके साथ-साथ बाह्य सेवा-पूजा भी

प्रभुको होनी चाहिये। इसीलिये वैष्णव-सम्प्रदायमें अष्टयाम न त्वहं कामये राज्यं न स्वर्गं नापुनर्भवम्। कामये दुःखतप्तानां प्राणिनामार्तिनाशनम्॥ पूजाका विधान है, इसके साथ ही राजोपचार, पंचोपचार मुझे राज्यकी कामना नहीं, स्वर्ग-सुखकी चाहना तथा षोडशोपचार आदि बाह्य पूजाओंका विधान भी है। हमारी भारतीय सनातन पुरातन संस्कृति अद्भुत है,

है कि दु:खसे संतप्त प्राणियोंका कष्ट किस प्रकार जिसमें मानवके परम लक्ष्य (ईश्वर-दर्शन-आत्म-साक्षात्कार)-को परिलक्षित करनेहेतु अनेकानेक साधनोंपर

\* राम सदा सेवक रुचि राखी \* [ सेवा-\*\*\*\*\*\*\*\*\*\*\*\*\*\*\*\*\*\*\*\*\*\* चेष्टा ही भगवान्का भजन है। माला-जप भी करें, प्रकाश डाला गया है, यथा—जप, तप, व्रत, पूजापाठ, संयम, नियम, सत्संग तथा सुमिरन इत्यादि। निःसन्देह भजन भी करें, परंतु संसारमें, व्यवहारमें तथा व्यापारमें इन सब साधनोंका सम्पादन अनिवार्य रूपसे करना दुसरोंको दु:ख पहँचायें, धोखाधडी करें, बेईमानी करें, चाहिये, जिससे अन्तः करणमें एक विशेष प्रकारकी राग-द्वेष, लड़ाई-झगड़ा तथा परनिन्दा-परदोषदर्शनमें अमूल्य समय गँवायें तो यह भजन मात्र पाखण्ड बनकर सात्त्विकता, स्थिरता, प्रसन्नता एवं सद्भावनाका उदय होता है। ईश्वरप्राप्तिके इन साधनोंमें सेवाभाव सबसे रह जायगा। सारांशमें सबका दु:ख बँटा या मिटाकर सरल, सहज, सरस तथा श्रेष्ठ साधन है। सेवासे स्वयंका सुख पहुँचानेकी भरपूर चेष्टा करनेसे मानव सदैव उद्धार होता है, परमशान्ति और आत्मतृप्तिकी अनुभृति शान्त-प्रशान्त रहता है, वह शीघ्र ही ईश्वर-दर्शनका होती है, परंतु इसके साथ ही साथ समस्त भूतप्राणियोंका सुयोग्य अधिकारी बन जाता है। हित, उत्थान, विकास एवं उद्धार भी होता है। वह सेवकके लिये निम्नलिखित बातें आवश्यक हैं-तरनतारण बनकर स्वयं तो तरता है, सबका तारक भी (१) राग-द्वेषसे रहित होना चाहिये, (२) स्वार्थरहित बन जाता है— होना चाहिये, (३) अहंकारसे रहित होना चाहिये, (४) आसक्तिसे रहित होना चाहिये। 'स तरित स तरित स लोकांस्तारयित।' स्त्री-पुरुष, पशु-पक्षी, जीव-जन्तु आदिसे भरा काम-क्रोध, लोभ-मोह, मद-मात्सर्य, ईर्ष्या, राग-हुआ यह संसार भगवान्का ही स्वरूप है। स्वयं भगवान् द्वेष—इनसे रहित होकर नम्रतापूर्वक निष्काम भावसे जो ही इस संसारके रूपमें प्रकट हैं-ऐसा मानकर सम्पूर्ण सेवामें संलग्न होगा, उसीकी सेवा पूर्णरूपसे सार्थक प्राणियोंकी सेवा करना, शरीर एवं इन्द्रियोंके द्वारा होगी। भगवानुकी सेवा करना है। यह भगवानुकी बहुत उच्च सेवाके प्रसंगमें एक रहस्यमय तथ्य यह है कि कोटिकी सेवा है। यह सब कुछ भगवान् ही हैं-ऐसा सेवा छोटी-बडी नहीं होती। जिस सेवाकार्यमें आसिक्त दृढ़तापूर्वक माननेवाला महात्मा पुरुष बहुत दुर्लभ है-नहीं, अभिमान नहीं, कोई अपना स्वार्थ नहीं, वह छोटी 'वासुदेवः सर्वमिति स महात्मा सुदुर्लभः॥' सेवा भी महान् सेवा बन जाती है। सेवकके लिये आवश्यक है कि वह मर्यादामें रहे। (गीता ७।१९) गोस्वामी तुलसीदासजी महाराज भी इस प्रकारकी सेवक यदि मर्यादाका पालन नहीं करता तो उससे सेवाको अनन्य भक्तका प्रमुख लक्षण मानते हैं-सेवाधर्म भंग हो सकता है। वेदमें सात मर्यादाएँ वर्णित सो अनन्य जाकें असि मित न टरइ हुनुमंत। हैं—१. ब्रह्महत्या, २. सुरापान, ३. चौर्यकर्म, ४. गुरुपत्नीगमन, ५. उपर्युक्त किन्हीं भी पापोंसे लिप्त व्यक्तिकी संगति एवं मैं सेवक सचराचर रूप स्वामि भगवंत॥ उससे सम्पर्क, ६. पुन:-पुन: पापाचरण करना, ७. पाप (रा०च०मा० ४।३) भगवान् राम कहते हैं—हे हनुमान्! अनन्य भक्त करके उसे छिपाना (न कहना)। ये बातें सेवकको वही है, जिसकी ऐसी बुद्धि कभी भी नहीं टलती कदापि नहीं करनी चाहिये। सेवकके लिये सबसे (अविचल रहती है) कि मैं तो सेवक हूँ और यह महत्त्वपूर्ण मर्यादा यह है कि जो हमारा सेव्य है, उसके चराचर (जड़-चेतन) जगत् मेरे स्वामी भगवान्का प्रति निष्ठा-भाव, निष्कामता और निरन्तरता बनी रहे। साक्षात् रूप है। भगवत्सेवकका लौकिक जीवन तथा आचरण सेवाकी सफलताका व्यापक रूप है—अपनी ओरसे अत्यन्त पवित्र तथा आदर्श होना चाहिये। सदाचारहीन किसीको भी किसी प्रकारका कष्ट न पहुँचाना। सबकी प्राणी कभी भगवानुका सेवक नहीं हो सकता। सभी वर्ण सेवामें युक्त होकर सुख पहुँचानेकी निष्कामभावपूर्ण तथा आश्रमके मनुष्य भगवत्सेवाके समान रूपसे अधिकारी

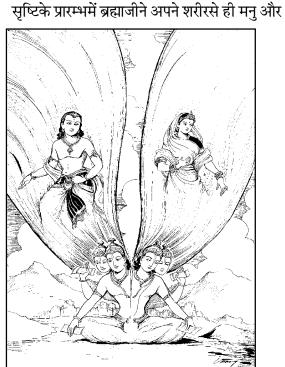
अङ्क ] * सेवामय जीवन—एव	क व्यावहारिक दर्शन∗
**************************************	
हैं। देवता, असुर, धनवान्, निर्धन, ज्ञानी अथवा मूर्ख	जिसकी सेवा की जा रही है, उसे यह मालूम होना
कोई भी क्यों न हो? भगवत्सेवाद्वारा नित्य कल्याणको	चाहिये कि यह सेवा हमारी तरफसे है। इसके पीछे
प्राप्त करता है। वानररूप श्रीहनुमान्जी, पक्षीरूप श्रीगरुड़जी	उद्देश्य यह रहता है कि वह सेव्य व्यक्ति हमारे प्रति
सर्परूपी श्रीशेषजी, असुरकुलोत्पन्न श्रीप्रह्लाद, बलि,	कृतज्ञ रहे और उसकी सहानुभूति प्राप्त हो—यह भी
विभीषण आदि, स्त्रीकुलोत्पन्न शबरी, कुन्ती, दासीपुत्र	एक प्रकारका सूक्ष्म स्वार्थ ही है। इससे भी यथासम्भव
विदुरजी आदि इसके प्रत्यक्ष उदाहरण हैं।	बचनेका प्रयास करना उत्तम है। 'मैं सेवक हूँ'-'मैं सेवा
किसी छोटे या बड़े स्वार्थ-सिद्धिके उद्देश्यसे	करता हूँ'—अभिमानपूर्वक ऐसी भावनासे सेवाका गौरव
अथवा किसीसे कुछ पानेकी आकांक्षासे किसीकी सेवा	नष्ट हो जाता है। सेवककी दृष्टि तो भगवान्पर रहनी
करनेका कोई महत्त्व नहीं है। जैसे—अधिकारियोंकी	चाहिये। उनकी प्रेरणासे और उनकी शक्तिसे यह सेवा
सेवा, मन्त्रियोंकी सेवा। इसी लक्ष्यसे संस्थाओं अथवा	हो रही है—यह भावना होनी चाहिये।
राजनीतिक पार्टियोंको दान आदि देना। चुनाव आदिमें	श्रीरामचरितमानसमें इसके स्पष्ट उदाहरण प्राप्त
सहायता करना, यह वास्तवमें न सेवा है न दान, यह	होते हैं। मानसमें सेवाधर्मके तीन वरेण्य पात्र हैं—
एक प्रकारसे अपने स्वार्थ-साधनका एक तरीका है।	श्रीभरतजी, श्रीलक्ष्मणजी और श्रीहनुमान्जी। भरतजीका
इसके अतिरिक्त दूसरोंको सतानेवालोंकी सहायता करना	सेवाधर्म इतना निष्काम, निष्कलुष और छल-कपटरहित
सेवा नहीं है, वह तो परपीड़न है। व्यभिचारी व्यभिचारकी	है कि कुलगुरु श्रीवसिष्ठजी तथा देवगुरु बृहस्पति भी
इच्छा करता है, उसकी इच्छाको पूर्ण करना सेवा नहीं	उनके इस स्वभावकी भूरि-भूरि प्रशंसा करते हैं। भरत-
है। चोरी करनेमें चोरकी सहायता करना सेवा नहीं है।	चरितका प्रसंग मानसके सेवाधर्मका हृदय है। श्रीभरतजी
पापीके पापकर्ममें सहायता करना सेवा नहीं है। निर्दोषकी	चरणपादुकाकी सेवा करते हैं तो श्रीलक्ष्मणजी भगवान्
सेवा ही सेवा है, परंतु यदि पापी भी बीमार हो तो उसे	श्रीरामकी चरणरजकी सेवाको ही जीवनका परम ध्येय
रोगमुक्त करनेका प्रयत्न तो यथासाध्य अवश्य करना	मानते हैं। मानसमें सेवाधर्मका सम्पूर्ण विनियोग
चाहिये। सेवक जिसकी सेवा करता है, उसके आगे-	श्रीहनुमान्जीके चिरतमें हुआ है। श्रीहनुमान्जी ऐसे
पीछेके बरतावको नहीं देखता। इतना ही देखता है कि	विलक्षण सेवक हैं, जिन्होंने भगवान्के साथ-साथ
वह जो सेवा कर रहा है, वह सीधे उसके वर्तमान पापमें	भक्तको सेवा की। उन्होंने यथा अवसर वानरों,
तो सहायता नहीं कर रही है।	सुग्रीवजी, श्रीलक्ष्मणजी, श्रीभरतजीको भी संकटोंसे
अपनेको उपकार करनेवाला बताकर सेवाका अभिमान	उबारा। यह उनके सेवाधर्मकी पराकाष्ठा है। इसी प्रकार
करके सेव्यको (जिसकी सेवा की जा रही है, उसको)	मानसमें माता जानकीका सेवा-धर्म सबको अभिभूत कर
अपनेसे नीचा मानना, उसपर एहसान करना, उसके द्वारा	देता है। वस्तुतः श्रीरामचरितमानसमें अनेक प्रसंगोंमें
कृतज्ञता या प्रत्युपकार प्राप्त करनेका स्वयंको अधिकारी	सेवाधर्मका निरूपण किया गया है, जो अत्यन्त व्यावहारिक,
समझना और न मिलनेपर उसे कृतघ्न मानना, यह भी	प्रासंगिक और प्रेरक है।
शुद्ध सेवा नहीं है, एक प्रकारका व्यापार ही है। एक	भगवान्की सेवाका सर्वप्रथम साधन है भगवान्की
दृष्टान्तसे यह बात और स्पष्ट होगी—	आज्ञाका पालन करना। भगवान्का सच्चा सेवक वही है,
मान लें किसी असहाय, रुग्ण व्यक्तिकी सेवा	जो उनकी आज्ञा मानता है और वही भगवान्का
करनेकी प्रेरणा हुई और हमने उसके लिये दयावश	परमप्रिय भी है। श्रीरामचरितमानसमें भगवान्ने स्वयं
ओषधि और दूध आदिकी व्यवस्था कर दी। उस	कहा है—
व्यक्तिको यह मालूम नहीं है कि यह सेवा किसकी Hinduism Discord Server https://dsc.gg/dha तरफर्स हो रही है। हमार मनम यह बात आती है कि	सोइ सेवक प्रियतम मम सोई। मम अनुसासन मानै जोई॥ arma   MADE WITH LOVE BY Avinash/Sha (रा०च०मा० ७।४३।५)

\* राम सदा सेवक रुचि राखी \* [ सेवा-भूमिपर रख दे। गोग्रास देनेका भी विशेष महत्त्व है। वेद, उपनिषद्, गीता, रामायण, श्रीमद्भागवत-पुराण आदि ग्रन्थ भगवान्की ही आज्ञा हैं, जो पुरुष इन भूतयज्ञसे विभिन्न प्राणियोंकी सेवा सम्पन्न हो जाती है। शास्त्रोंकी बात नहीं मानता, वह भगवान्की बात भी नहीं गृहस्थ धर्ममें अतिथि-सेवाको विशेषरूपसे महत्त्व मानता-यह सुस्पष्ट है। अतः वह न भक्त है, न दिया गया है और कहा गया है कि घरमें आये वैष्णव— अतिथिका उठकर स्वागत करे, उसे आसन प्रदान करे, उसके विश्रामकी व्यवस्था करे, उसके साथ मध्र श्रुतिस्मृती ममैवाज्ञे यस्ते उल्लंघ्य वर्तते। वाणीका प्रयोग करे और असूयारहित होकर उसका आज्ञाच्छेदी मम द्वेषी मद्भक्तोऽपि न वैष्णवः॥ आदर-सम्मान करे—'गृहेष्वभ्यागतं प्रत्युत्थानासन-(वाधुलस्मृति १८९) स्मृतियोंमें गृहस्थाश्रमका विशेष वर्णन प्राप्त होता **शयनवाक्सूनृतानसूयाभिर्मानयेत्।**' (वसिष्ठ० ८। १२) है। चारों आश्रमोंमें गृहस्थका ही विशेष गौरव है। सभी श्रीभर्तृहरिने नीतिशास्त्रमें सेवाधर्मको अतीव गहन भिक्षार्थी (ब्रह्मचारी, वानप्रस्थ एवं संन्यासी) गृहस्थका तथा योगियोंके लिये भी अगम्य अथवा असाध्य बताया ही आश्रय लेकर स्थित रहते हैं। इस प्रकार गृहस्थाश्रम है—'सेवाधर्मः परमगहनो योगिनामप्यगम्यः।' गोस्वामी अन्य तीनों आश्रमोंकी योनि है। इसीमें सभी आश्रमोंके तुलसीदासजीने भी इस आर्ष तत्त्वको स्वीकारकर मानसमें प्राणियोंकी उत्पत्ति होती है, अत: यह सभीका आधार लिखा है '**सब तें सेवक धरमु कठोरा।**'यह इसलिये कि भले ही सेवक कितनी सावधानी और लगनसे कार्य भी है और आश्रय भी है। सद्गृहस्थ नित्य पंचयज्ञोंके द्वारा, श्राद्धतर्पणद्वारा और यज्ञ, दान एवं अतिथि-सेवा करे, पर भूलसे भी कहीं चूक हुई तो उसके सारे किये-करायेपर पानी फिर जाता है। अपनी प्रशंसा सभीको प्रिय आदिके द्वारा सबका भरण-पोषण करता है, सबकी सेवा करता है, इसीलिये वह सबसे श्रेष्ठ कहा गया है। लगती है, सेवाधर्मीको भी लगेगी, परंतु उसे इससे दूर स्मृतियोंमें प्रत्येक गृहस्थके लिये निर्देश है कि अपने द्वारा रहना चाहिये; क्योंकि इससे अभिमान उत्पन्न होता है, भरण-पोषण किये जानेयोग्य जो भी हो, उसकी सेवा जो विनाशका कारण अथवा पतनके गर्तमें गिरानेवाला करना गृहस्थका मुख्य कर्तव्य है। माता-पिता, गुरु, होता है। इसीलिये सेवाधर्मको अतीव गहन और अगम्य भार्या, प्रजा, दीन-दुखी, आश्रित व्यक्ति, अतिथि, ज्ञातिजन, बताया गया है। बन्धु-बान्धव, विकलांग, अनाथ, शरणागत तथा अन्य वास्तवमें सेवा मुक्तिका साक्षात् साधन है, अन्यान्य जो कोई भी सेवक तथा धनहीन व्यक्ति हो, उन सभीको सारे साधनोंका फल है—ऐसा सच्चा सेवक बनना। सच्चा पोष्यवर्गके अन्तर्गत माना है। पोष्यवर्गकी कभी उपेक्षा सेवक निर्मल-हृदय, दयार्द्र, धैर्यवान्, उद्यमशील और न करे। अन्न-वस्त्र, ओषधि आदिसे परम धर्म एवं परम कुशल होता है। उसे देखते ही दूसरोंके हृदयोंमें शान्तिका कर्तव्य समझकर सदा उनकी सेवा करे। ऐसा करनेसे अनुभव होने लगता है। जिसका प्रसंग चलते ही पल-पलमें महान् फलकी प्राप्ति होती है अन्यथा नरक-यातना आनन्दकी अनुभूति होने लगे, वही सच्चा सेवक है। भोगनी पड़ती है-जिसके हृदयमें सदा शान्ति, जिसके मुखपर सदा भरणं पोष्यवर्गस्य प्रशस्तं स्वर्गसाधनम्॥ प्रसन्नता, जिसका आधार एकमात्र भगवान् और जिसका नरकं पीडने चास्य तस्माद्यत्नेन तं भरेत्। प्रातव्य एक परमात्मा ही हो, वह सच्चा सेवक है। जिसका चरित्र शीशेके समान निर्मल हो, जिसका हृदय (दक्षस्मृति २।३०-३१) कुत्ता, पतित, चाण्डाल, कुष्ठी अथवा यक्ष्मादि नम्र हो, जो परार्थ ही जीवन धारण करता हो, उसीका पापजन्य रोगसे पीड़ित व्यक्तिको तथा कौवों, चींटी और नाम सेवक है। कीड़ों आदिके लिये अन्नको पात्रसे निकालकर स्वच्छ - राधेश्याम खेमका

st st राम सदा सेवक रुचि राखी st

## राजर्षि मनु और उनका सेवा-विधान

जीने अपने शरीरसे ही मन् और हितैषी हैं।



उनके आज्ञानुसार मनु तथा शतरूपाद्वारा मैथुनी सृष्टिका प्रादुर्भाव हुआ। ये ही आदि मनु प्रजापालनके लिये ब्रह्माजीकी आज्ञासे आदि राजा हुए। राजिष मनु और महारानी शतरूपाका चरित्र अत्यन्त पावन, उज्ज्वल एवं सदाचारमय रहा है। यथासमय स्वायम्भुव मनुके प्रियव्रत और उत्तानपाद नामक दो पुत्र तथा आकृति, देवहूति और प्रसूति नामक तीन कन्याएँ उत्पन्न हुईं। फिर आगे इन्हींसे सृष्टिका विस्तार होता गया। महाभागवत ध्रुव इन्हीं मनुमहाराजकी परम्परामें सुनीति और उत्तानपादके पुत्रके रूपमें उत्पन्न हुए। राजिष मनु मानव-जातिके आदि पिता हैं। ऐश्वर्य,

अनुशासन, तप, त्याग, सदाचार, धर्माचरण, भूतदया और सर्वभूत-हितैषिता तथा भगवत्सेवा—ये मनुदम्पतीके जीवनके महान् आदर्श रहे हैं। महारानी शतरूपा तो शील, विनय एवं पातिव्रतकी आदर्श हैं। पातिव्रतधर्म क्या है? यह इनके जीवनका आचरण ही है। पुण्यकीर्ति राजर्षि मनु और देवी

शतरूपा भगवदीय अंशसे सम्पन्न हैं और जीवमात्रके परम

शतरूपाको प्रादुर्भृत किया। स्वयम्भू ब्रह्माजीसे उत्पन्न

होनेके कारण मनु स्वायम्भुव मनु कहलाते हैं। ब्रह्माजीने

सृष्टिके विस्तारके लिये मनुको सृष्टि करनेकी आज्ञा दी।

गये और मुनिवृत्ति धारणकर भगवान्के द्वादशाक्षर मन्त्र— **'ॐ नमो भगवते वासुदेवाय'** का प्रेमसहित जप करने लगे। उनके मनमें बस यही एक अभिलाषा रह गयी थी कि इन्हीं आँखोंसे भगवान्के दर्शनकर जीवनको सफल किया जाय। कठोर तप करते-करते हजारों वर्ष बीत गये। कई बार ब्रह्मा आदि देवता आये और उन्होंने बडे-बडे प्रलोभन दिये, किंतु ये तनिक भी विचलित नहीं हुए। शरीर सूखकर काँटा हो गया, हड्डीका ढाँचामात्र रह गया— '*अस्थिमात्र होइ रहे सरीरा'* परंतु मनमें जरा भी पीड़ा नहीं हुई। मन तो भगवान्के चरणोंमें लगा था और आँखें भगवद्दर्शनको उत्कण्ठित थीं। इस अनन्य प्रेमको देखकर

सुदीर्घकालतक धर्मपूर्वक प्रजापालन करते हुए अन्तमें

इनके मनमें यह बात आयी कि घरमें रहकर राज्यका भोग करते हुए वृद्धावस्था आ गयी, किंतु विषयोंसे वैराग्य नहीं हुआ। भगवान्के भजनके बिना जीवनका यह अमूल्य समय यों ही बीत गया—यह सोचकर उन्हें बड़ा दु:ख हुआ। अन्तत: पुत्रोंको राज्यका भार देकर ये महारानी शतरूपाके साथ तपोभूमि नैमिषारण्यमें गोमतीके तटपर आ

भगवान् नीलमणिने अपनी शक्तिके साथ मनोरम रूपमें इन दम्पतीको दर्शन दिया।

अङ्क ] * राजर्षि मनु औ	र उनका सेवा-विधान* ४५
<u> इडहइइइइइइइइइइइइइइइइइइइइइइइइइइइइइइइइ</u> शोभाके समुद्र अपने परमाराध्यके दर्शनकर दोनों	क विषय नहीं है, जो मनुजीके विधानशास्त्र (मनुस्मृति)-
रामाक समुद्र अपन परमाराव्यक दरानकर दानाः नेत्र अपलक हो गये। शरीरकी सुधि भूल गयी, चरणोंप	
3 %	
गिर पड़े। भगवान्ने बड़े प्रेमसे उठाया और वर माँगनेव	
कहा। बड़े संकोचसे मनुजी बोल पड़े—हे कृपानिधान अं	-
मैं आपके समान पुत्र चाहता हूँ—' <i>चाहउँ तुम्हा</i> ————————————————————————————————————	
समान सुत।' भगवान् हँसकर बोले—'आपु सरि	
खोजौं कहँ जाई। नृप तव तनय होब मैं आई।	
बस मनुजीके लिये तो यही पर्याप्त था। समय बी	•
और ये ही मनु-शतरूपा आगे चलकर दशरथ-कौसल	
बने और अवधमें भगवान्का श्रीरामरूपमें तथा मिथिला	, c
आदिशक्तिका श्रीजानकीजीके रूपमें अवतरण हुआ।	3 3,
ऐसे उदारकीर्ति मनुजीको ब्रह्माजीने सम्पूर्ण प्रजाव	n भावसे सेवा करनेवाला समदर्शी ब्राह्मीस्थितिको अनायास
राजा बनाया। हम सभी मनुकी सन्तानें हैं। मनुसे ह	ही ही प्राप्त कर लेता है। वह स्वाराज्यमें प्रतिष्ठित हो जाता
मानव-मनुष्य—ये शब्द बने हैं। महाराज मनुने अप	ने है—
प्रजाका धर्मपूर्वक, न्यायपूर्वक पालन करनेके लिये र	नो सर्वभूतेषु चात्मानं सर्वभूतानि चात्मनि।
विधान बनाया और कर्तव्य-अकर्तव्यके विषयमें उ	नो समं पश्यन्नात्मयाजी स्वाराज्यमधिगच्छति॥
नियम-कानून बनाये, वे ही नियम-निर्देश मनुके नाम	से एवं यः सर्वभूतेषु पश्यत्यात्मानमात्मना।
मनुस्मृति या मानवधर्मशास्त्रके नामसे विख्यात हुए	[। स सर्वसमतामेत्य ब्रह्माभ्येति परं पदम्॥
मनुस्मृति सृष्टिका आदि सनातन संविधान है। वेदार्थव	ज (मनुस्मृति १२।९१, १२५)
प्रतिपादन करनेके कारण सभी विधानों (धर्मशास्त्रों)	- अधर्ममें कभी मन न लगाये
में मनुस्मृतिका प्राधान्य है— <b>' वेदार्थोपनिबद्धत्वात् प्राधा</b> न	<b>यं</b> राजर्षि मनु अपनी सन्तानोंको सावधान करते हुए
<b>हि मनोः स्मृतम्।'</b> मनुजीको सर्वज्ञानमय, सर्ववेदम	य कहते हैं कि अपने जीवनको भूतदयामय तथा सेवामय
कहा गया है— <b>'सर्वज्ञानमयो हि सः।'</b> (मनु० २।७	) बनाना चाहिये। निष्काम सेवा महान् धर्म है। दूसरेको
वेदने बताया है कि मनुजीद्वारा जो भी कहा गया है, व	ह कष्ट देना महान् अधर्म है, अत: ऐसे अधर्ममें अपना मन
सबके लिये सदा प्रामाण्यस्वरूप है, औषधके सम	न नहीं लगाना चाहिये। सदा मन, वाणी, कर्मसे धर्माचरणमें
हितकर तथा जीवनरक्षक है, इसीलिये मनुजीके कथनव	त्रो  ही संलग्न रहना चाहिये—' <b>धर्मे दध्यात् सदा मनः</b> '
परम भेषज, परम औषध कहा गया है—' <b>यत्किञ</b>	व (मनुस्मृति १२।२३), <b>'नाधर्मे कुरुते मनः'</b> (मनु॰
<b>मनुरवदत् तद्भेषजं भेषजतायाः।'</b> (ताण्ड्यब्रा	० १२।११८)। मनुष्यको यह समझना चाहिये कि जीवसेवा
२३।१६।७) <b>'यद्वै किञ्च मनुख्वदत् तद् भेषज</b> म	[ <sup>'</sup> आदि शुभकर्मोंका शुभ फल प्राप्त होता है और अशुभ
(कृष्णयजु० तैत्ति० सं० २।२।१०।२)। इस प्रक	ार कर्मोंका अशुभ फल प्राप्त होता है—यह विचारकर
मनुजीके वचनोंका पालन करनेसे परम कल्याणकी प्रापि	
- सहज ही हो जाती है।	करना चाहिये— <b>'मनोवाङ्मूर्तिभिर्नित्यं शुभं कर्म</b>
मानवजीवनके श्रेय:सम्पादनका कोई भी ऐर	ता <b>समाचरेत्॥'</b> (मनुस्मृति ११।२३१)

\* राम सदा सेवक रुचि राखी \* [ सेवा-जिसने अपने जीवनमें कर्तव्यबुद्धिसे माता-पिताकी सेवा अधर्माचरणका भोक्ता कौन? महाराज मनु यह सिद्धान्त प्रतिपादित करते हैं कि नहीं की, उसके जन्मको ही धिक्कार है, क्योंकि माता-यदि व्यक्ति जीवनमें निन्दित कार्योंको करता है, माता, पिता गर्भधारण, प्रसव-वेदना, पालन, रक्षण, वर्धन तथा देखभालके द्वारा जिस कष्टको सहर्ष सहन करते हैं, पिता, गुरुकी सेवा नहीं करता, हिंसा करता है, जीवोंपर दया-भाव नहीं रखता, जो उसके वर्ण एवं आश्रमके उसका बदला सैकड़ों वर्षों क्या, अनेक जन्मोंमें भी लिये कर्म नियत किये गये हैं, उनका अपलापकर चुकाना सम्भव नहीं है— निषिद्धाचरण करता है तो उसका फल उसे अवश्य यं मातापितरौ क्लेशं सहेते सम्भवे नृणाम्। भोगना पड़ता है, यदि उसे उसका फल नहीं मिलता तो न तस्य निष्कृतिः शक्या कर्तुं वर्षशतैरपि॥ उसके पुत्रको मिलता है। यदि पुत्रको भी नहीं मिलता (मनुस्मृति २।२२७) तो पौत्रादिको अवश्य प्राप्त होता है, निन्दित कर्मोंका गुरु, पिता, माता और बड़ा भाई—ये लोग यदि फल कभी निष्फल नहीं होता— कोई अपमान करें तो भी उनका अपमान नहीं करना यदि नात्मनि पुत्रेषु न चेत्पुत्रेषु नप्तृषु। चाहिये, क्योंकि गुरु परमात्माकी मूर्ति है, पिता प्रजापतिकी न त्वेव तु कृतोऽधर्मः कर्तुर्भवति निष्फलः॥ मूर्ति है, माता पृथ्वीकी मूर्ति है और ज्येष्ठ सहोदर भाई अपनी ही मूर्ति है। यदि माता-पिता और गुरु सन्तुष्ट हो (मनुस्मृति ४। १७३) किसीको तनिक भी कष्ट न दे गये तो सभी तपस्याओंका फल प्राप्त हो जाता है। इन मनुजी बताते हैं लोक-जीवनमें भले ही स्वयंको तीनोंकी सेवा ही सबसे बड़ा तप है—'तेषां त्रयाणां कितना ही कष्ट क्यों न उठाना पड़े, कितनी ही हानि शुश्रूषा परमं तप उच्यते।' (मनुस्मृति २।२२९) माता-पिता और गुरु-ये ही तीनों लोक, ये ही तीनों क्यों न सहनी पड़े, चाहे प्राणोंका उत्सर्गतक करना पड़े, पर सर्वदा दूसरेके हितचिन्तनमें सदा तत्पर रहना चाहिये। आश्रम, ये ही तीनों वेद और ये ही तीनों अग्नि हैं। इन दूसरेका कैसे भला हो, कैसे मुझे सेवाका अवसर प्राप्त तीनोंकी प्रमादरहित होकर सेवा करनेवाला तीनों लोकोंको हो और कैसे मैं उसका सदुपयोग करूँ, इन सब बातोंपर जीत लेता है और इतना दीप्तिमान् बन जाता है कि सूर्य विचार करते रहना चाहिये। दूसरेका अपकार करनेका आदि देवताओंके समान स्वर्गमें आनन्दित होता है। किंचित् भी ख्याल मनमें नहीं रखना चाहिये, कर्मसे मातुभक्तिसे भूलोक, पिताकी भक्तिसे अन्तरिक्षलोक और करनेकी बात तो सोचनी ही नहीं चाहिये। रही वाणीकी गुरुकी भक्तिसे ब्रह्मलोककी प्राप्ति होती है। जबतक बात तो वाणीका तो सदा संयम रखना चाहिये। सदा माता-पिता और गुरु जीते हैं, तबतक अन्य किसी प्रिय बोलना चाहिये, हितकर बात बोलनी चाहिये, जिस धर्माचरणकी आवश्यकता नहीं है, अपित् उन्हींके प्रिय और हित-कार्यमें लगकर नित्य उनकी शुश्रुषा करता वचनसे कोई दुखित हो, उद्विग्न हो—ऐसी वाणी नहीं बोलनी चाहिये-रहे। इन तीनोंकी सेवा ही परम धर्म है, अन्य धर्म तो उपधर्म हैं-नारुंतुदः स्यादार्तोऽपि न परद्रोहकर्मधीः। ययास्योद्विजते वाचा नालोक्यां तामुदीरयेत्॥ यावत् त्रयस्ते जीवेयुस्तावन्नान्यं समाचरेत्। तेष्वेवं नित्यं शुश्रुषां कुर्यात्प्रियहिते रतः॥ (मनुस्मृति २।१६१) माता-पिता और गुरुकी सेवा—सर्वोपरि धर्म एष धर्मः परः साक्षादुपधर्मोऽन्य उच्यते॥ Hinduism मिंह द्र्या d Server https://dsc. श्रुव्यक्रीharma | MADE WITH LOVE BY Avipash Şha

अङ्क ] * राजर्षि मनु और	उनका सेवा-विधान∗ ४७
<u> इ. </u>	न्द्रक्रक्रक्रक्रक्रक्रक्रक्रक्रक्रक्रक्रक्
कहते हैं कि दस उपाध्यायोंकी अपेक्षा आचार्य, सौ	बलिवैश्वदेव करनेका विधान है। ऋषि, पितर (पूर्वज),
कहत है कि देस उपाय्यायाका अपद्मा आयाप, सा आचार्योंकी अपेक्षा पिता और सहस्र पिताओंकी अपेक्षा	देवता, भूत और अतिथि—ये लोग गृहस्थसे अपनी-
आयायाका अपद्धा ।पता आर सहस्र ।पताआका अपद्धा माताका गौरव अधिक है, अत: वह सर्वापेक्षा विशेष	सन्तुष्टिकी आशा रखते हैं, अत: ये कर्म नित्य
माताका नारप आवक हे, अतः यह सपापद्मा प्रशय पूज्य, सेव्य एवं आदरणीय है—	करणीय है।* स्वाध्याय (वेदपाठ आदि)-से ऋषियोंकी,
•	हवनपूजनसे देवताओंकी, पितृतर्पण आदिसे पितरोंकी,
उपाध्यायान् दशाचार्यं आचार्याणां शतं पिता।	अन्नादिसे मनुष्यों (अतिथियों)-की और बलिकर्मसे
सहस्रं तु पितॄन् माता गौरवेणातिरिच्यते॥	•
(मनुस्मृति २।१४५)	समस्त भूत-प्राणियोंकी सेवा करनी चाहिये—
सेवाका सहज साधन—अभिवादन मनुजी बताते हैं कि अभिवादन सेवा एवं सदाचारका	स्वाध्यायेनार्चयेतर्षीन् होमैर्देवान् यथाविधि।
9	पितॄन् श्राद्धैश्च नॄन्नन्नैभूंतानि बलिकर्मणा॥
प्रथम सोपान है। अभिवादनसे सभी अनुकूल तथा	(मनुस्मृति ३।८१) अस्तिभिन्ना स्थापन सम्बन्धे हैं।
सन्तुष्ट हो जाते हैं। अभिवादन करने अर्थात् प्रणाम	अतिथिका लक्षण करते हुए महाराज मनु बताते हैं
करनेसे और सर्वदा श्रेष्ठजनोंकी सेवा करनेसे मनुष्यकी	कि जिसके आने एवं ठहरनेकी तिथि (समय) ज्ञात न
आयु, विद्या, यश और बल—ये चारों बढ़ते हैं—	हो, वह अतिथि कहलाता है—'अनित्यं हि स्थितो
अभिवादनशीलस्य नित्यं वृद्धोपसेविनः।	यस्मात्तस्मादितिथिरुच्यते॥'(मनुस्मृति ३।१०२) मनुजी
चत्वारि तस्य वर्धन्ते आयुर्विद्या यशो बलम्॥	कहते हैं कि घरपर आये हुए अतिथिको आसन, पैर
(मनु० २।१२१)	धोनेके लिये जल, शक्तिके अनुसार भोजनादि प्रदान
अभिवादनकी विधिमें मनुजी बताते हैं कि अपने	करना चाहिये और सब प्रकारसे उसका आदर करते हुए
दाहिने हाथसे गुरु आदिके दाहिने चरणका और बायें	उसकी सेवा करनी चाहिये। यदि घरमें अन्न आदि न
हाथसे बायें चरणका स्पर्शकर दाहिने हाथको ऊपर तथा	रहे या अभाव हो तो ये चार वस्तुएँ तो हमेशा रहती
बायें हाथको उसके नीचे रखते हुए प्रणाम करना	ही हैं—(१) तृण (बैठने अथवा शयन करनेके लिये
चाहिये—	घास आदिका आसन), (२) भूमि (बैठनेके लिये स्थान),
व्यत्यस्तपाणिना कार्यमुपसंग्रहणं गुरोः।	(३) जल (हाथ-पैर धोनेके लिये तथा पीनेके लिये)
सव्येन सव्यः स्प्रष्टव्यो दक्षिणेन च दक्षिणः॥	तथा (४) मधुर वचन। अतः अन्य साधनोंके अभावमें
(मनुस्मृति २।७२)	·
एक हाथसे कभी भी अभिवादन नहीं करना	तृणानि भूमिरुदकं वाक्वतुर्थी च सूनृता।
चाहिये।	एतान्यपि सतां गेहे नोच्छिद्यन्ते कदाचन॥
अतिथिदेवो भव	(मनुस्मृति ३।१०१)
भारतीय सनातन संस्कृतिमें 'अतिथि' को देवस्वरूप	अतिथिसेवासे धन, आयु, यश तथा उत्तमलोककी
माना गया है और उसका आदर-सत्कार देवबुद्धिसे	प्राप्ति होती है—' <b>धन्यं यशस्यमायुष्यं स्वर्ग्यं</b>
	वातिथिपूजनम्॥' (मनुस्मृति ३।१०६) मनुजी बताते
भूत-प्राणियोंको अन्नादिसे संपृक्तकर उनकी सेवाका	हैं कि देवताओं, ऋषियों, मनुष्यों, अतिथियों, घरमें स्थित
* ऋषियज्ञं देवयज्ञं भूतयज्ञं च सर्वदा। नृयज्ञं पितृयज्ञं च यथाशत्ति	र्न हापयेत्॥ (मनुस्मृति ४।२१)

४८ * राम सदा सेव	क रुचि राखी * [ सेवा-
\$\$\$\$\$\$\$\$\$\$\$\$\$\$\$\$\$\$\$\$\$\$\$\$\$\$\$\$\$\$\$\$\$\$\$\$\$\$	**************************************
देवताओं तथा पोष्यवर्ग (आश्रितजनों)-को तर्पण, श्राद्ध,	है—
अन्नादिदान एवं भोजन कराकर तथा उन्हें सेवा–सत्कार,	'पतिं शुश्रूषते येन तेन स्वर्गे महीयते।'
मानदानसे सन्तुष्ट करनेके अनन्तर ही स्वयं भोजन करना	(मनुस्मृति ५।१५५)
चाहिये—	मन, वचन तथा शरीरसे संयत रहती हुई जो स्त्री
भुक्तवत्स्वथ विप्रेषु स्वेषु भृत्येषु चैव हि।	पतिके विरुद्ध कोई कार्य नहीं करती है, सदा उसके
भुञ्जीयातां ततः पश्चादवशिष्टं तु दम्पती॥	अनुकूल रहती है, वह पितलोक प्राप्त करती है तथा उसे
देवानृषीन् मनुष्याँश्च पितृन् गृह्याश्च देवताः।	सज्जन लोग पतिव्रता कहते हैं—
पूजियत्वा ततः पश्चाद् गृहस्थः शेषभुग्भवेत्॥	पतिं या नाभिचरति मनोवाग्देहसंयुता।
(मनुस्मृति ३।११६-११७)	सा भर्तृलोकमाप्नोति सद्भिः साध्वीति चोच्यते॥
केवल अपने लिये भोजन बनानेवाला तथा बिना	(मनुस्मृति ५।१६५, ९।२९)
किसीको खिलाये अकेला ही भोजन करनेवाला पापको	गोसेवा
ही खाता है— <b>'अघं स केवलं भुङ्के यः</b>	सनातन विधानके प्रतिष्ठापक महाराज मनुको
<b>पचत्यात्मकारणात्।'</b> (मनुस्मृति ३।११८)	समस्त जीवनिकायके प्रति अत्यन्त ही उदारबुद्धि थी।
मनुजी यह भी बताते हैं कि अतिथिको चाहिये कि	गोधर्मकी तो उनमें पूर्ण प्रतिष्ठा थी। शास्त्रोंमें बताया
जिस घरमें शक्तिके अनुसार आसन, भोजन, शय्या, जल,	गया है कि गौ स्वभावत: अत्यन्त पवित्र, निर्मल और
मूल-फल आदिसे स्वागत-सत्कार नहीं हो, वहाँ निवास	परम दयालु है, वह व्यक्तिके मनोजात भावोंको जान
न करे—	लेती है। मनुजी बताते हैं कि वह स्वयं पवित्र ही नहीं
आसनासनशय्याभिरद्भिर्मूलफलेन वा।	है, अपितु दूसरोंको भी पवित्र बना देती है। सचेतन ही
नास्य कश्चिद् वसेद् गेहे शक्तितोऽनर्चितोऽतिथि:।।	नहीं, वह अचेतनको भी शुद्ध बना देती है। जिस दूषित
(मनुस्मृति ४। २९)	एवं अपवित्र भूमिमें गोमूत्र आदिका छिड़काव कर दिया
पतिसेवा	जाय तथा गोमाता एक दिन-रात्रि उस भूमिपर निवास
मनुजीने विस्तारसे स्त्रीधर्मका निरूपण किया है	कर ले तो वह भूमि शुद्ध हो जाती है, भूमि-शुद्धि के
और उसके अस्वातन्त्र्यको प्रधानता दी है 'न स्त्री	कई उपाय मनुजीने बताये हैं, उनमें गोनिवास अन्यतम
स्वातन्त्र्यमर्हितं (मनु० १।३) तथा उसके मुख्य	है—
कर्तव्यके रूपमें पतिसेवाका ही निरूपण किया है, मनुजी	सम्मार्जनोपाञ्जनेन सेकेनोल्लेखनेन च।
कहते हैं कि पिता या पिताकी अनुमतिसे भाई उसका	गवां च परिवासेन भूमिः शुद्ध्यति पञ्चभिः॥
विवाह जिसके साथ कर देते हैं, स्त्रीको यावज्जीवन	(मनुस्मृति ५।१२४)
उसकी सेवा–शुश्रूषा करनी चाहिये तथा उसकी बातोंका	मनुजी गोदानकी महिमा बताते हुए कहते हैं कि
उल्लंघन नहीं करना चाहिये—	वृषभका दान करनेवाला अचल सम्पत्ति और गोदान
यस्यै दद्यात्पिता त्वेनां भ्राता वाऽनुमतेः पितुः।	करनेवाला सूर्यलोकको प्राप्त करता है—'अन <b>डुहः श्रियं</b>
तं शुश्रूषेत जीवन्तं संस्थितं च न लङ्घयेत्॥	<b>पुष्टां गोदो ब्रध्नस्य विष्टपम्॥'</b> (मनुस्मृति ४। २३१)
(मनुस्मृति ५।१५१)	मनुजीने वृषको भगवान् धर्मका स्वरूप बताया है—
पतिकी शुश्रूषामात्रसे वह देवलोकमें पूजित होती	<b>'वृषो हि भगवान् धर्मः</b> ' (मनुस्मृति ८।१६)। वृष

\* राजर्षि मनु और उनका सेवा-विधान \* अङ्क ] शब्दका अर्थ है काम अर्थात् मनोभिलषित वस्तुकी वर्षा सूक्ष्म एवं विलक्षण सूत्र हैं। मनुजी बताते हैं कि गो, करनेवाला। इन गोमाताओं और वृषकी सेवासे महान् देवता, ब्राह्मण, पीपल आदि देववृक्षोंकी अवमानना कभी फल की प्राप्ति होती है। नहीं करनी चाहिये। सदा उनका आदर-मान करते हुए उनमें देवबुद्धि रखनी चाहिये, इसीलिये जहाँ कभी भी गोचरभूमिका उत्सर्ग जिस स्थानपर गौएँ स्वतन्त्रतापूर्वक निर्भय होकर ये हों, इन्हें अपने दाहिने करके मार्गमें चलना चाहिये-विचरण करती हुई घास आदि चरती हैं, वह भूमि मृदं गां दैवतं विप्रं घृतं मधु चतुष्पथम्। गोचरभूमि कहलाती है प्राचीनकालमें प्रत्येक ग्रामके प्रदक्षिणानि कुर्वीत प्रज्ञातांश्च वनस्पतीन्॥ समीप गोचरभूमि छोड़ी जाती थी, जिसपर किसीका (मनुस्मृति ४।३९) समष्टिकी सेवा-पूर्तधर्मका निर्वहन वैयक्तिक अधिकार नहीं होता था। उस भूमिपर सभी गौएँ घास चरती थीं। महाराज मनुने इस सम्बन्धमें यह समस्त जीवनिकायकी सेवाके उद्देश्यसे परोपकारबृद्धि विधान बनाया है कि ग्रामके चारों तरफ सौ धनुष अर्थात् रखते हुए निष्काम भावसे किये गये पूर्तधर्मके कार्यों का महान् फल है। गर्मीमें जल पीनेके लिये प्याऊ लगवाना, चार सौ हाथतक या तीन बार छड़ी फेंकनेसे जितनी दूर जाय, उतनी दूरतक नगरके चारों ओर ग्रामसे तिगुनी भूमि तालाब, कुआँ आदिका निर्माण, औषधालय, अनाथालय, गौओंके चरने-फिरनेके लिये छोड़नी चाहिये। उतनी उद्यान, फल एवं छायादार वृक्षोंका रोपण आदि परमार्थके दूरीतक कोई फसल आदि नहीं बोनी चाहिये-कार्य पूर्तकर्मींके अन्तर्गत आते हैं, इनसे सबका भला होता है, अतः पूर्तधर्मके कार्योंको मोक्षदायक बताया धनुःशतं परीहारो ग्रामस्य स्यात्समन्ततः। गया है—'मोक्षं पूर्तेन विन्दति' (शंखस्मृति १)। शम्यापातास्त्रयो वापि त्रिगुणो नगरस्य तु॥ राजर्षि मनु बताते हैं कि न्यायोपार्जित द्रव्यसे श्रद्धाके (मनुस्मृति ८। २३७) साथ किये गये ये कार्य अक्षय फल देनेवाले होते हैं, इस गोचरभूमिके भीतर कोई व्यक्ति काँटेदार बाड आदि लगाकर खेती करे और उस फसलको गौएँ नष्ट अतः सेवाभाव को ध्यानमें रखते हुए इनका निर्माण कर दें तो राजाको चाहिये कि वह गोस्वामीको दण्डित अवश्य कराना चाहिये— न करे, क्योंकि गोचरभूमिमें किसीको फसल आदि श्रद्धयेष्टं च पूर्तं च नित्यं कुर्यादतन्द्रितः। बोनेका अधिकार नहीं है। श्रद्धाकृते ह्यक्षये ते भवतः स्वागतैर्धनैः॥ मनुजी एक विशेष बात बताते हुए कहते हैं कि (मनुस्मृति ४। २२६) दस दिनके भीतर ब्याई हुई गाय, वृषोत्सर्गमें छोडा गया इस प्रकार मनुजीने अपनी मनुस्मृतिमें सेवाके चक्र, त्रिशूल आदिसे चिहिनत साँड और देवताओंके विविध आयामोंका निरूपण किया है और यह बताया उद्देश्यसे छोड़ा गया पशु अपने रखवालेके साथ हो है कि यथाविधि इस धर्मशास्त्रमें बताये गये नियमोंके अथवा बिना रखवालेके हो और खेतको चर जाय तो अनुसार नि:स्वार्थ सेवामय जीवनयापन करनेवाला व्यक्ति रखवाला दण्डनीय नहीं होता है-आदर्श मानव कहलाता है। अत: सेवाके इन आदर्शोंकी सीख विश्वके सभी जनोंको भारतसे ग्रहण करनी चाहिये— अनिर्दशाहां गां सूतो वृषान् देवपशूँस्तथा। सपालान् वा विपालान् वा न दण्ड्यात् मनुरब्रवीत्।। एतद्देशप्रसूतस्य सकाशादग्रजन्मनः। स्वं स्वं चरित्रं शिक्षेरन् पृथिव्यां सर्वमानवाः॥ (मनुस्मृति ८। २४२) महाराज मनुद्वारा निर्दिष्ट गोसेवाके ये अत्यन्त (मनुस्मृति २।२०)

\* सेवा-निष्ठा **\*** अङ्क ] € ₹ सेवा-निष्ठा (ब्रह्मलीन स्वामी श्रीअखण्डानन्द सरस्वतीजी महाराज) यात्रा वहींसे प्रारम्भ होती है, जहाँ मनुष्य स्थित हैं ? क्या आपने समग्र जीवनके लिये निष्ठापूर्वक इसी रहता है। साधनाका उपक्रम भी वहींसे होता है, जहाँ स्थितिका वरण कर लिया है ? यदि नहीं तो आपको उस साधककी स्थिति होती है। यदि अपनी स्थितिसे स्थितिका बोध प्राप्त करना चाहिये; जहाँ पहँचना है। उच्चकोटिकी साधना की जाय तो उसमें स्थिरता आना अज्ञात मार्गसे अज्ञात लक्ष्यकी प्राप्तिके लिये अज्ञानमें कठिन होता है और साधक गिर पड़ता है। इसकी रहकर कैसे अग्रसर हुआ जा सकता है ? अनुपलब्ध— अनिमले साधन और अनजाने मार्गसे, आप वहाँ कैसे अपेक्षा यदि नीचेके स्तरसे साधनाका आरम्भ हो तो पहुँच पायेंगे? आपको एक अनुभवी सन्त और सुहृद् शीघ्र उन्नतिकी सम्भावना रहती है। पथ-प्रदर्शककी अपेक्षा है। क्या आप भीतर-ही-भीतर हम कहाँ स्थित हैं, इसका पता अपने-आपको इस अपेक्षाका अनुभव करते हैं? क्या आपके हृदयमें चलना कठिन है। कारण यह है कि मनुष्य प्राय: अपने व्यवहारमें कुछ आसक्ति या दम्भ रखता है। इनका इसकी पिपासा है? अभ्यास, संस्कार इतना प्रगाढ़ हो जाता है कि वह अपने हितैषीके प्रति जो श्रद्धा, विश्वास अथवा स्वयंको वैसा ही समझने लगता है। इससे आत्म-सेवा-भावना है, वह उसका उपकार करनेके लिये नहीं निरीक्षण-परीक्षणकी योग्यता क्षीण हो जाती है। जिस है। 'मैं अपनी सेवाके द्वारा उसको उपकृत करता हूँ या सूक्ष्मदृष्टिसे वह दूसरोंको देख पाता है, वैसी दृष्टि सुख पहुँचाता हूँ '—यह भावना भी अपने अहंकारको ही अपने-आपपर नहीं डाल पाता। जैसे अपने नेत्रोंकी आभूषण पहनाती है। विश्वास या श्रद्धा दुसरेको पुतली अपनी आँखसे नहीं दीखती, वैसे ही अपने गुण-अलंकृत करनेके लिये नहीं होती, वह अपने अन्त:करणकी दोष भी मनुष्यको नहीं दीखते। वस्तुत: आत्म-निरीक्षणके शुद्धिके लिये होती है। सेवा जिसकी की जाती है, लिये भी किसी सूक्ष्म दृष्टि-सम्पन्न अन्य सत्पुरुषकी उसकी तो हानि भी हो सकती है। लाभ उसीको होता सहायताकी ही आवश्यकता है। साधककी त्रुटियोंकी है, जो सद्भावसे सेवा करता है। अतएव सेवा करते जानकारी किसी अनन्तदर्शी-सत्पुरुषको ही होती है। समय यह नहीं देखना चाहिये कि हम किसकी सेवा कर उसे उसकी हित-भावनापर विश्वास होना भी आवश्यक रहे हैं? भाव यह होना चाहिये कि सेवाके द्वारा हम है। जिसके जीवनमें अपने किसी हितैषीपर पूरा विश्वास अपना स्वभाव अच्छा बना रहे हैं; अर्थात् अपने न हो, उस संशयालुको कभी शान्ति नहीं मिल सकती। स्वभावसे आलस्य, प्रमाद, अकर्मण्यता आदि दोषोंको उसका अहंकार कितना बड़ा है और वह कितना दूर कर रहे हैं। यह सेवा हमारे लिये गंगाजलके समान असहाय है—इस बातको वह स्वयं समझ नहीं पाता। निर्मल एवं उज्ज्वल बनानेवाली है। वस्तृत: सेवाका फल अपने लक्ष्यके प्रति भी वह आस्थावान् नहीं है; क्योंकि कोई स्वर्गादिकी प्राप्ति नहीं है और न धन-धान्यकी। अपने लक्ष्य-वेधके प्रति यदि उत्साह और तत्परता होती सेवा स्वयंमें सर्वोत्तम फल है। जीवनका ऐसा निर्माण जो तो वह झुठा अहंकार छोडकर अपनी त्रृटियोंको समझने, अपनेमें रहे, सेवा ही है। सेवा केवल उपाय नहीं है, मानने और दूर करनेके लिये प्रयत्नशील हो जाता। स्वयं उपेय भी है। उपेय माने प्राप्तव्य। यदि आपकी वस्तुत: वह अपनी नासमझीको ही बडी समझदारी निष्ठा सेवामें हो गयी तो कुछ भी प्राप्त करना शेष नहीं मानकर सत्यसे विमुख हो रहा है। रहा। जिनके मनमें—'हमें तो सेवाका कोई फल नहीं Hinduismu Discord Server https://dac.ag/dhafma, L MADE WITH hove a BY Astinash/Fa

\* राम सदा सेवक रुचि राखी \* िसेवा-जानते। उनकी दृष्टि अपनी प्राप्त जीवनशक्ति एवं प्रज्ञाके आप जो पाना चाहते हैं या जैसा जीवन बनाना चाहते हैं, उसे आज ही पा लेनेमें या वैसा बना लेनेमें क्या आपत्ति सदुपयोगपर नहीं है, किसी आगन्तुक पदार्थपर है। सेवा कभी अधिक नहीं हो सकती; क्योंकि जबतक अपना है ? आप अपने जिस भावी जीवनका मनोराज्य करते हैं, सम्पूर्ण प्राण सेवामें समा नहीं गया, तबतक वह पूर्ण नहीं वैसा अभी बन जाइये। उस जीवनको प्राप्त करनेके लिये हुई, अधिकताका तो प्रश्न ही क्या? सच पूछा जाय तो अभ्यासकी पराधीनता क्यों अंगीकार करते हैं ? आप जैसा जो कुछ होना चाहते हैं, अभी हो जाइये। अपने जीवनको सेवा ही जीवनका साधन है और वही साध्य भी है। विश्वको सेवाकी जितनी आवश्यकता है, उसकी भविष्यके गर्तमें फेंक देनेसे क्या लाभ ? आप सेवापरायण होना चाहते हैं तो हो जाइये। आपका जीवन क्या अपनेसे तुलनामें हमारी सेवा सर्वथा तुच्छ है। यदि विश्वकी सेवाके लिये क्षीर-सागरके समान सेवाभावकी आवश्यकता है तो दूर है ? क्या उसके प्राप्त हो जानेमें कोई देर है ? फिर दुविधा हमारी सेवा एक सीकर-(बूँद)-के बराबर भी नहीं है। क्यों है ? सच्ची बात यह है कि आपके जीवनमें कोई ऐसी सेवकके प्राण अपनी सेवाकी अल्पता देख-देखकर व्याकुल वस्तु घुस आयी है, आपके अन्तर्देशमें किसी वस्तु या होते हैं और उसकी वृद्धिके लिये अनवरत प्रयत्नशील रहते व्यक्तिकी आसक्तिने ऐसा प्रवेश कर लिया है कि आप हैं। जिसको अपनी सेवासे आत्मतुष्टि हो जाती है, वह उसका परित्याग करनेमें हिचकिचाते हैं। इसीसे जैसा होना सेवारसका पिपासु नहीं है। पिपासा अनन्त रसमें मग्न हुए चाहते हैं, वैसा हो नहीं पाते। आप मनके निर्माणके बिना शान्त नहीं हो सकती। वह रस ही सेवकका सत्य है। चक्रव्यूहमें मत फॅंसिये, शरीरको ही वैसा बना लीजिये। मन सेवा इसी सत्यसे एक कर देती है। भी वस्तुत: एक शारीरिक विकास ही है। शरीर अपने सेवाधर्मको योगियोंके लिये भी गहन कहा गया अभीष्ट स्थानपर जब बैठ जाता है तो मन भी अपनी उछल-है—'सेवाधर्मः परमगहनो योगिनामप्यगम्यः' वह कूद बन्द कर देता है। पहले मन ठीक नहीं होता, मनको कठिन भी कम नहीं—'सब तें सेवक धरमु कठोरा।' ठीक किया जाता है। आप जो सेवाकार्य कर रहे हैं, वह आपको साधना है। सम्पूर्ण जीवनको उसीमें परिनिष्ठित उसे समझना भी कठिन है। वस्तुत: जबतक सेवाके लिये किसी उद्दीपनकी अपेक्षा रहती है, तबतक सेवा नैमित्तिक करना है। अत: साध्य स्थितिको बारम्बार अनुभवका विषय बनाना ही साध्यमें स्थित होना है। है, नैसर्गिक नहीं। सेवा सेव्यसे दूर रहकर भी हो सकती है और जो सम्मुख हो, उसकी भी हो सकती है। जैसे आपकी सेवाका प्रेरक स्रोत क्या है? क्या किसी मनोरथकी पूर्तिके लिये सेवा करते हैं ? क्या अहंकारकी सूर्यका प्रकाश, चन्द्रमाका आह्वाद सहज उल्लास है, वैसे ही सेवाका आलम्बन चाहे कोई भी हो, उसमें आकांक्षा है ? क्या सेवाके द्वारा किसीको वशमें करना सेवकको परमतत्त्वका ही दर्शन होता है। आलम्बन चाहते हैं? तो सुन लीजिये, यह सेवा नहीं, आपके बनानेमें अपने पूर्ण संस्कार या पूर्वाग्रह काम करते हैं, स्वार्थका ताण्डव नृत्य है। अपनी सेवाको पवित्र रखनेके परंतु सब आलम्बनोंमें एक तत्त्वका दर्शन करनेसे शुभग्रह लिये सूक्ष्म-दृष्टिकी आवश्यकता है। एवं अशुभग्रह दोनोंसे प्राप्त इष्ट-अनिष्टकी निवृत्ति हो आपकी सेवामें किसीसे स्पर्धा है? आप किसीकी जाती है और सब नामरूपोंमें अपने इष्टका ही दर्शन होने सेवासे अपनी सेवाकी तुलना करते हैं? दूसरेको पीछे लगता है। अभिप्राय यह है कि सेवा न केवल करके स्वयं आगे बढ़ना चाहते हैं? किसी दूसरेकी सेवा देखकर आपके मनमें जलन होती है? क्या आप ऐसा चित्तशुद्धिका साधन है, प्रत्युत शुद्ध वस्तुका अनुभव भी है। अत: सेवा कोई पराधीनता नहीं है, यह स्वातन्त्र्यका सोचते हैं कि अमुक व्यक्तिके कारण मेरी सेवामें बाधा पडती है ? स्पष्ट है कि आप सेवाके मर्मस्पर्शी अन्तरंग एक विलक्षण प्रकाश है, दिव्य-ज्योति है।

अङ्क ] * सेवा-	-निष्ठा * ६५
****************	************************
रूपको नहीं देख पाते। सेवा चित्तको सरल, निर्मल एवं	स्वभाव बन जाता है और अन्यकी ओरसे निवृत्ति हो
उज्ज्वल बनाती है। उसमें अनुरोध-ही-अनुरोध है,	जाती है। यह स्वार्थ होनेपर भी निवृत्तिका साधन है,
किसीका विरोध या अवरोध नहीं है।	इसलिये प्रारम्भिक दशामें इसको दोष नहीं कहा जा
श्रद्धासे सम्पृक्त सेवाका नाम ही धर्म है। स्नेह-	सकता। <b>'तत्सुखे सुखित्वम्'</b> (ना० भ० सू० २४)—
युक्त सेवा वात्सल्य है। मैत्रीप्रवण सेवा ही सख्य है।	यह प्रेमका प्रथम लक्षण है। जिस हृदयमें अपने इष्टको
मधुरसेवा ही शृंगार है। प्रेम-सेवा ही अमृत है। सेवा	देखना है, रखना है, उसमें प्रियताका, सुखका परिप्रेक्ष्य
संयोगमें रससृष्टि करती है और वियोगमें हितवृष्टि करती	होना भी आवश्यक है। अपने इष्टके सुखके लिये ही
है। सेवा वह दृष्टि है, जो पाषाणखण्डको ईश्वर बना	अपने हृदयमें सौरम्य, माधुर्य, सौन्दर्य, सौकुमार्य और
दे, मिट्टीके एक कणको हीरा कर दे। सेवा मृतको भी	सौस्वर्यके साथ-ही-साथ हितभावकी भूमिकाका आना
यश:शरीरसे अमर कर देती है। इसका कारण क्या है?	अपेक्षित है। जो हृदय इष्टकी मुसकान देखकर मुसकुराता
सेवामें अहंकार मिट जाता है, ब्रह्म प्रकट हो जाता है।	नहीं, उसका प्रेम प्रकाशमयी चितवनके साथ प्रफुल्लित
सेवा-निष्ठाकी परिपक्वताके लिये उसका विषय	नहीं हो जाता, उसमें निष्ठा देवी पदार्पण नहीं करती,
एक होना आवश्यक है। वह भले ही माँ हो, पिता हो, पति	परंतु यह रसास्वादन एक प्रकारका स्वार्थ ही है। सेवा
हो, गुरु हो या इष्ट हो; सबमें ईश्वर एक है। एककी सेवा	कोटि-कोटि दु:खको वरण करके भी अपने स्वामीको
अचल हो जाती है और कोई भी वस्तु अपनी अचल	सुख पहुँचाती है। व्यजन करनेवाला स्वयं प्रस्वेद-स्नान
स्थितिमें ब्रह्मसे पृथक् नहीं होती। चल ही दृश्य होता है,	करके भी अपने इष्टको व्यजनकी शीतल-मन्द-सुगन्ध
अचल नहीं। अचल अदृश्य और ज्ञात होकर ज्ञानस्वरूप	वायुसे तर करता है। यहीं सेवा 'मैं' के अन्तर्देशमें
ब्रह्मसे अभिन्न हो जाता है, अत: किसी भी साधनामें	विराजमान परमात्मासे एक कर देती है।
निष्ठाका परिपाक ही सिद्धि है। यदि सेवाका विषय अन्य	सेवामें इष्ट तो एक होता ही है, सेवक भी एक
रूपसे स्फुरित होगा तो उपासनाका विषय ईश्वर होगा। यदि	ही होता है। वह सब सेवकोंसे एक होकर अनेक रूप
सेवाकी वृत्ति परिपक्व दशामें शान्त हो जायगी तो वह	धारण करके अपने स्वामीकी सेवा कर रहा है। अनेक
आत्मासे भिन्न न दीखेगी। यही कारण है कि सेवाका	सेवकोंको अपना स्वरूप देखता हुआ, सेवाके सब
आश्रय और विषय एक हो जाता है और सेवक-सेव्यमें	रूपोंको भी अपना ही रूप देखता है। अपने इष्टके लिये
भेद नहीं रह जाता। यदि विचारकी उच्च कक्षामें बैठकर	सुगन्ध, रस, रूप, स्पर्श और संगीत बनकर वह स्वयं
देखा जाय तो नि:सन्देह अद्वैत स्थिति और अद्वैतवस्तुका	ही उपस्थित होता है। सेवकका अनन्य भोग्य स्वामी
बोध एक हो जायगा। अन्तर्वाणी स्वयं महावाक्य बनकर	होता है और स्वामीका अनन्य भोग्य सेवक। सभी
प्रतिध्वनित होने लगेगी। अतः साधनाका प्रारम्भ सेवासे	गोपियोंको राधारानी अपना ही स्वरूप समझती हैं और
होकर सेवाकी अनन्यता, अनन्तता एवं अद्वितीयतामें ही	सभी विषयोंके रूपमें वही श्रीकृष्णको सुखी करती हैं।
परिसमाप्त हो जाता है।	भिन्न दृष्टि होनेपर ईर्ष्याका प्रवेश हो जाता है। सेवामें
सेवाके प्रारम्भमें स्व-सुखकी वासना रहती है।	ईर्ष्या विष है और सरलता अमृत।
अपने इष्टकी सेवा करे, सुख पहुँचाकर सेवक सुखी	सेवामें समाधि लगना विघ्न है। किसी देश-
होता है। इससे एक लाभ तो यह होता है कि शनै:-	विशेषमें या काल-विशेषमें विशेष रहनीके द्वारा सेवा
शनै: सुखी होनेके निमित्तों और उपादानोंसे निवृत्ति होने	करनेकी कल्पना वर्तमान सेवाको शिथिल बना देती है।
लगती है। केवल अपने इष्टके सुखसे ही सुखी होनेका	सेवामें अपने सेव्यसे बड़ा ईश्वर भी नहीं होता और

\* राम सदा सेवक रुचि राखी \* िसेवा-सेवासे बड़ी ईश्वराराधना भी नहीं होती! भक्त पुण्डरीककी रूप संकीर्ण हो जाता है, नित्य-निरन्तर उदीर्ण नहीं कथाके द्वारा यही रहस्य स्पष्ट किया गया है। स्वयं रहता। सतत उदीर्ण न रहनेपर वह स्वामीको अविरत रसास्वादन करनेसे भी स्वामीको सुख पहुँचानेमें बाधा रूपसे सुख भी नहीं दे सकता। स्वामीका ज्ञान ही पड़ती है। किसी भी कारणसे किसीके प्रति भी चित्तमें सेवकका ज्ञान है। जहाँ ज्ञानमें भिन्नता आयेगी, वहाँ कटुता आनेपर सेवा भी कटु हो जाती है; क्योंकि सेवा मतभेद होनेकी सम्भावना बनी रहेगी और बुद्धि अहंके शरीरका धर्म नहीं, रसमय हृदयका मधुमय नित्य नृतन पक्षमें आबद्ध हो जायगी। निश्चय ही मतभेदमें उल्लास है। सेवा भाव है, क्रिया नहीं है। भाव मधुर वैमनस्यका बीज निहित रहता है। वह आज या कल रहनेपर ही सेवा मधुर होती है। इस बातसे कोई सम्बन्ध अंकुरित होगा और सेवाको कुण्ठित कर देगा। स्वामीका नहीं कि वह कटुता किसके प्रति है। किसीके प्रति भी सुख ही सेवकका सुख है, उसका अपना कोई अलगसे हो, रहती तो हृदयमें ही है। वह कटुता अंग-प्रत्यंगको सुख नहीं है। अलग सुख सेवककी परिच्छिन्तता, अपने रंगसे रँग देती है, रोम-रोमको कषाय-युक्त कर स्वार्थ और पृथक्ताका पोषक है। सेवकका जबतक देती है। अत: अविश्रान्त रूपसे अपने अन्तरको नितान्त अपने स्वामीसे तादात्म्य नहीं हो जाता, वेदान्तकी शान्त रखकर रोम-रोमसे रसका विस्तार करना ही भाषामें — जबतक सेवकावच्छिन चैतन्य स्वाम्यवच्छिन सच्ची सेवा है। अपना स्वामी ही सब कुछ है और चेतनसे एक नहीं हो जाता, तबतक सेवा पूर्ण नहीं होती। यह एकताका भाव स्थिति या सायुज्य नहीं है। हमारा सब कुछ उसकी सेवा है। सेवाकी पूर्णताका अर्थ है-राधा-कृष्णकी एकता या स्वामीकी सत्ता ही सेवककी सत्ता है। सेवकका आत्मा-परमात्माकी एकता। पूर्ण एकतामें द्वैत नितान्त अस्तित्व पृथक् नहीं होता। अस्तित्व पृथक् होते ही बाधित हो जाता है। यही सेवा है और साधनाका एक नया 'मैं' उत्पन्न हो जाता है और वह सेवारसको अपनी ओर समेटने लगता है। ऐसी स्थितिमें सेवाका लक्ष्य भी यही है। सेवा निष्ठाका स्वारस्य भी यही है। भक्ति अर्थात् सेवा ( स्वामी श्रीप्रेमपुरीजी महाराज) यों तो ईश्वरविषयक परानुरक्ति (परम प्रेम)-को भाले जिज्ञासुको देखकर प्रसन्न हो गये और सुधा-सनी 'भक्ति' कहा गया है; फिर भी जिससे प्रेम होगा, उसकी वाणीमें बोले—'प्रभुके प्यारे, जगत्के अन्नदाता कृषकदेव! मन, वाणी तथा कायासे जो कुछ करें, प्रभुके लिये ही सेवाका होना स्वभावतः अनिवार्य है; अतएव 'भक्ति' शब्दका धात्वर्थ है 'सेवा'। किसी भी कर्मका सम्बन्ध करें। आपके अधिकारानुसार आपके हिस्सेमें आया हुआ भगवान्के साथ हो जानेपर वह कर्मयोग बन जाता है कृषिकर्म आपके लिये अवश्यकर्तव्य है। आपके और इसीका दूसरा नाम है—'भक्ति'। इसे स्पष्ट करनेके स्वभावानुसार आपके लिये नियत इस कर्मको प्रभुकी आज्ञाका पालन करनेकी नीयतसे करते रहनेपर पाप, लिये एक लोकगाथाको उद्धृत किया जाता है। एक देहाती किसानने उस समयके एक प्रसिद्ध संतके समीप अपराध एवं रोगादिके होनेकी सम्भावना ही नहीं रहती, विधिवत् जाकर जिज्ञासा की कि 'भगवन्! मुझ दीन, यद्यपि इस कार्यको वर्षा, शीत-आतप आदिमें खुले हीन, अकिंचनपर दया कीजिये और मुझे आनन्दकन्द आकाशके नीचे, खड़े पैर, घोर परिश्रमके साथ करना

प्रभुकी प्राप्तिका उपाय बताइये।' नवप्रसूता गाय बछड़ेको होता है। इतनेपर भी सफलताकी कोई गारन्टी नहीं, देखकर जैसे पिन्हा जाती है, वैसे ही सन्त भी भोले- मेघ-देवताका मुख ताकना पड़ता है; इस प्रकार यह कर्म अङ्क ] \* निरपेक्ष सेवा-धर्म \* स्वयं झोलेमें लेकर शहरों, गाँवों और बाहरी बस्तियोंमें विवाह, द्विरागमन आदि अवसरोंपर देना-दिलाना, साध्-महात्मा, विद्यार्थी आदिको देना-दिलाना अथवा उचित अथवा मेला आदिमें उनका प्रचार करना—यह भी एक मूल्यपर या बिना मूल्य लोक-हितार्थ वितरण करना-परमार्थ-विषयकी सेवा है। यह भी यदि अभिमान और कराना, ऋषिकुल, गुरुकुल, ब्रह्मचर्याश्रम, हाईस्कूल, स्वार्थका त्याग करके निष्कामभावसे भगवत्प्रीत्यर्थ की कालेज, विद्यालय, पाठशाला, जेलखाना, अस्पताल और जाय तो 'परम सेवा' में परिणत हो जाती है। इसलिये प्रत्येक मनुष्यको इस प्रचार-कार्यको अपने आयुर्वेदिक चिकित्सालय आदिमें उपर्युक्त आध्यात्मिक कल्याणके लिये परमात्माकी प्राप्तिके साधनका रूप देकर साहित्यको मूल्य लेकर या बिना मूल्य वितरण करना-करवाना, दुकान खोलकर या लारियोंद्वारा ठेलोंद्वारा या बडी तत्परता और उत्साहके साथ करना चाहिये। निरपेक्ष सेवा-धर्म ( संत श्रीविनोबा भावे ) हम पैदा होते हैं, तब तीन संस्थाएँ साथ लेकर सबसे पहले हम यह देखें कि यज्ञका अर्थ क्या आते हैं। मनुष्य इन तीनों संस्थाओंका कार्य भलीभाँति है ? सृष्टि-संस्थासे हम प्रतिदिन काम लेते हैं। यदि सौ चलाकर अपना संसार सुखमय बना सके, इस विषयमें आदमी एक जगह रहते हैं तो दूसरे दिन वहाँकी सारी गीता हमारा पथ-प्रदर्शन करती है। सृष्टि दूषित दिखायी देने लगती है। वहाँकी हवा हम वे तीन संस्थाएँ कौन-सी हैं ? पहली संस्था है-दूषित कर देते हैं, जगह गन्दी कर देते हैं, अन्न खा जाते हमारे आसपास लपेटा हुआ यह शरीर, दूसरी संस्था हैं और इस तरह सृष्टिको छिजाते हैं। हमें सृष्टि-हमारे आसपास फैला हुआ यह विशाल ब्रह्माण्ड—यह संस्थाकी इस छीजनकी पूर्ति करनी चाहिये। इसीलिये अपार सृष्टि है, जिसके हम एक अंश हैं। वह समाज, यज्ञका आविर्भाव हुआ। जिसमें हमारा जन्म हुआ, हमारे जन्मकी प्रतीक्षा सृष्टिकी जो हानि हो गयी है, उसे पूरा करना ही यज्ञ करनेवाले माता-पिता, भाई-बहन, अड़ोसी-पड़ोसी-है। आज हजारों वर्षोंसे हम जमीनें जोतते आ रहे हैं, उससे यह हुई तीसरी संस्था। हम रोज इन तीनों संस्थाओंका जमीनका कस ( उर्वरक-शक्ति) कम होता जा रहा है। यज्ञ उपयोग करते हैं-इन्हें छिजाते हैं। गीता चाहती है कि कहता है-पृथ्वीको उसका कस वापस लौटा दो। जमीन हमारे द्वारा इन संस्थाओंमें जो छीजन (कमी) आती है, जोतो, उसे सूर्यकी धूप खाने दो, उसमें खाद डालो; सृष्टिकी उसकी पूर्तिके लिये हम सतत प्रयत्न करें और अपने हानि पूरी करना—यह है यज्ञका एक हेतु। दूसरा हेतु है— जीवनको सफल बनायें। इन संस्थाओंके प्रति हमारे जो उपयोगमें लायी हुई वस्तुओंका शुद्धीकरण। हम कुएँका जन्मजात कर्तव्य हैं, उन्हें हम निरहंकार होकर करें। उपयोग करते हैं, जिससे आसपास गन्दगी हो जाती है, पानी इन कर्तव्योंको पूरा तो करना है, परंतु उनकी इकट्ठा हो जाता है। कुएँके पासकी यह सृष्टि जो अशुद्ध पूर्तिकी योजना क्या हो? यज्ञ, दान और तप-इन हो गयी है, उसे शुद्ध करना चाहिये। वहाँका गन्दा पानी तीनोंके योगसे वह योजना बनती है। यद्यपि इन शब्दोंसे निकाल डालना चाहिए, कीचड़ दूर कर देना चाहिये। हम परिचित हैं तथापि इनका अर्थ हम अच्छी तरह नहीं क्षति-पूर्ति और सफाई करनेके साथ ही वहाँ कुछ प्रत्यक्ष समझते। यदि हम इनका सही अर्थ समझ लें और इन्हें निर्माण-कार्य भी करना चाहिये, यह तीसरी बात भी यज्ञके अपने जीवनका धर्म बनानेका प्रयत्न करें तो ये तीनों अन्तर्गत है। हम रोज कपड़े पहनते हैं तो हमें चाहिये कि संस्थाएँ सफल हो जायँ और हमारा जीवन भी मुक्ति रोज सूत कातकर उसकी कमी पूरी कर दें। कपास पैदा असिंगप्रेमांन्तारि । अस्त्रावित ervei https://dsc.gg/dharm्न, ी असि DE WITH । अर्ट पूर्व अत्रांग अनि पश्चिप

\* सेवामय-जीवन \* अङ्क ] सेवामय-जीवन ( गीतामनीषी स्वामी श्रीवेदान्तानन्दजी महाराज) 'सेवा' शब्द देखने, पढने, सुनने एवं बोलनेमें अति साधनोंका सम्पादन अनिवार्य रूपसे करना चाहिये. जिससे लघु—छोटा है, परंतु इसके अर्थ, भाव एवं परिणाम अन्त:करणमें एक विशेष प्रकारकी सात्त्विकता, स्थिरता, अतिशय गहन, विशाल, महान् एवं रहस्यमय हैं। सेवा प्रसन्नता एवं सद्भावनाका उदय होता है। ईश्वर-प्राप्तिके शब्द मिठास एवं रससे परिपूर्ण है। सेवा वशीकरणका इन साधनोंमें सेवाभाव सरल, सहज, सरस तथा श्रेष्ठ मन्त्र है, आशीर्वादका तन्त्र है तथा सफलताका यन्त्र है। साधन है। कारण, सेवाके अतिरिक्त जितने भी आध्यात्मिक सेवाका अभिप्राय-१. सेव्यमें लीन अर्थात् साधन हैं, उनमें साधककी स्वकल्याणकी भावना निहित रहती है, किंतु सेवामें स्वयंका उद्धार होता है, परमशान्ति एकरूप-एकरस हो जाना। २. स्वयं कष्ट उठाकर समस्त प्राणियोंको सुख पहुँचाना। ३. स्वार्थरहित, कामनारहित और आत्मतृप्तिकी अनुभृति होती है, इसके साथ-ही-एवं अहंकाररहित होना।४. कर्तव्यबुद्धिसे कर्मोंका सम्पादन, साथ समस्त भूत-प्राणियोंका हित, उत्थान, विकास एवं कर्मोंको अकर्म बनाना। ५. दयाके भावोंको क्रियान्वित उद्धार भी होता है। वह तरनतारन बन स्वयं तो तरता करने—व्यावहारिक रूप प्रदान करनेकी दिव्य कला। है, सबका तारक भी बन जाता है— साधक यहाँ विशेष ध्यान दें कि सेवाका तात्पर्य 'स तरित स तरित स लोकांस्तारयति।' निष्काम सेवासे है। परहितके समान कोई श्रेष्ठ धर्म नहीं-कर्तव्य नहीं-**'पर हित सरिस धर्म नहिं भाई।'**अत: प्रत्येक कल्याणकामी निष्काम सेवाका अद्भुत लाभ—१. अहंकारका नाश एवं विनम्रताका विकास। २. मनकी निर्मलता साधकको ऐसे क्रान्तिकारी संसाधनको व्यावहारिक रूप देना चाहिये। ऐसा सेवक-उपासक परमेश्वरकी विशेष एवं एकाग्रता। ३. खुली आँखोंसे समाधिके आनन्दकी अनुकम्पा और प्रेमका अधिकारी बन जाता है। परहितरत दिव्यानुभूति। ४. मन स्व (आत्मा-परमात्मा)-में स्थित अर्थात् ईश्वर-दर्शन। ५. पुनर्जन्मकी समाप्ति एवं मोक्षपदकी सेवकसे भगवान् अतिशय प्रेम करते हैं। सिद्धान्तको प्रकट करनेवाला एक दिव्य प्राप्ति। निष्काम सेवीके लक्षण—वह अध्यात्मवादी, दुष्टान्त-किसी नगरमें एक भगवद्भक्त थे, जो सदैव समतावादी, आशावादी, परम उत्साही, धैर्यवान् 'धृत्यृत्साह-भगविच्चन्तनमें लीन रहते थे। संयमित एवं मर्यादित समन्वितः' (गीता १८। २६), सदाचारी, सर्वहितकारी, जीवन था उनका। एकबार एक देवदृत दो प्रकारकी नि:स्वार्थी, निरभिमानी एवं भगवद्भक्त होता है। सूचियाँ लेकर उस भजनानन्दी भक्तके घर प्रकट हुआ। सावधान साधक! सेवामें अभिमान एवं स्वार्थ उसने देवदूतका अभिनन्दन एवं अभिवादनकर पूछा-सेवकके सारे पुरुषार्थको मिट्टीमें मिला देते हैं। 'आपके करकमलोंमें ये सूचियाँ कैसी हैं?' देवदूतने जब सेवाभावका वास्तविक स्वरूप जाना जाता है, प्रथम सूची दिखाकर कहा—'इस सूचीमें उन महानुभावोंके शुभ नाम अंकित हैं, जो सर्वेश्वरसे प्रेम करते हैं।' तब किंवा जीवन सेवामय हो जाता है तो दिव्यानन्द, अखण्ड आनन्दकी अनुभृति हृदय-मन्दिरमें स्वतः होने लगती है। उस भक्तने बड़ी उत्सुकतापूर्वक पूछा—'देवदूत! क्या मेरा नाम भी इस सूचीमें है?' देवदूतने कहा—'सबसे हमारी भारतीय सनातन-पुरातन संस्कृति अद्भृत है, जिसमें मानवके परम-लक्ष्य (ईश्वरदर्शन-आत्मसाक्षात्कार)-ऊपर आपका ही शुभ नाम अंकित है।' उस भक्तने पुनः पूछा—'यह दूसरी सूची कैसी है?' देवदूतने कहा— को परिलक्षित करनेहेतु अनेकानेक साधनोंपर प्रकाश डाला गया है। यथा—जप, तप, व्रत, पूजा, पाठ, संयम, 'भक्तप्रवर! इस सूचीमें उन भक्तोंके नाम हैं, जिन्हें नियम, सत्संग तथा सुमिरन इत्यादि। नि:सन्देह इन सब भगवानुश्री अतिशय प्यार करते हैं।'

१०२ * राम सदा सेव	क रुचि राखी * [ सेवा-
<u> </u>	**************************************
उस भक्तने पूछा—'इस सूचीमें भी मेरा नाम	श्रीमद्भागवतमहापुराणमें भी राजा रंतिदेव दु:खोंकी
अंकित है क्या?' देवदूत बोले—'है तो सही, परंतु इसमें	आगमें झुलसते हुए प्राणियोंको देखकर दयायुक्त अमृतमय
आप प्रथम स्थानपर नहीं, दूसरे स्थानपर हैं। प्रथम स्थान	वचन कहते हैं—
तो आपके अमुक पड़ोसीका है।' उस भक्तने आश्चर्यचिकत	न कामयेऽहं गतिमीश्वरात् परा-
होकर कहा—'देवदूतजी! उस व्यक्तिको तो कभी	मर्ष्टद्धियुक्तामपुनर्भवं वा।
बैठकर आरती-पूजा-पाठ करते नहीं देखा। वह कभी	आर्ति प्रपद्येऽखिलदेहभाजा-
ईश्वरके नामका जप-भजन तथा सुमिरन भी नहीं करता।	मन्तःस्थितो येन भवन्त्यदुःखाः॥
वह तो केवल दीन-दुखियोंकी, कुष्ठरोगियोंकी, बीमारोंकी	(श्रीमद्भा० ९। २१। १२)
अथवा अनाथोंकी सेवा करता रहता है। प्यासोंको पानी,	भगवन्! मैं आपसे आठों सिद्धियोंसे युक्त परमगति
भूखोंको रोटी, धनहीनोंको धन, जरूरतमन्द कन्याओंकी	नहीं चाहता और तो क्या, मैं मोक्षकी कामना भी नहीं
शादी, निर्धन बच्चोंको पढ़ानेमें ही लगा रहता है।'	करता। मैं चाहता हूँ तो केवल यही कि सम्पूर्ण
देवदूतने कहा—'यही कारण है कि भगवान् उससे सबसे	प्राणियोंके हृदयमें स्थित हो जाऊँ और उनका सारा दु:ख
अधिक प्यार करते हैं। नर-सेवा ही नारायण-सेवा है।	मैं ही सहन करूँ, जिससे किसी भी प्राणीको दु:ख न
दीनोंकी सेवा ही दीनानाथ, द्वारकानाथ, जगन्नाथकी	हो।
सेवा है। जनसेवा ही जनार्दनकी सेवा एवं पूजा है;	यह अद्भुत परहितकारिताकी मिसाल है, जो अति
क्योंकि सर्वेश्वरसे भिन्न कुछ भी नहीं है।' गीता-	सराहनीय एवं अनुकरणीय है।
उपदेष्टा इस तथ्य एवं सत्यको बड़े सुन्दर ढंगसे प्रकट	भगवान् श्रीकृष्ण दिव्य घोषणा करते हैं कि समस्त
करते हैं—	प्राणियोंकी मनसा-वाचा-कर्मणा सेवा तथा हित करनेवाले
मत्तः परतरं नान्यत्किञ्चिदस्ति धनञ्जय।	मुझको प्राप्त होते हैं—
मयि सर्वमिदं प्रोतं सूत्रे मणिगणा इव॥	'ते प्राप्नुवन्ति मामेव सर्वभूतहिते रताः।'
(गीता ७।७)	(गीता १२।४)
अर्थात् हे धनंजय! मुझसे भिन्न दूसरा कोई भी	<b>'सर्वभूतहिते रताः'</b> की मशाल जलानेवाले प्रभुके
परम कारण नहीं है। यह सम्पूर्ण जगत् सूत्रमें सूत्रके	भक्तको चाहिये कि वह समदर्शी, समबुद्धि, समतामें
मिणयोंके सदृश मुझमें गुँथा हुआ है।	स्थित तथा समस्त इन्द्रियोंको संयमित रखे। अन्यथा इस
ऐसे परसेवारत भक्तोंके लिये ही तो भगवान् कहते	सेवा-सूत्रको अपनाना प्रदर्शनमात्र ही बन जायगा।
हैं—'मैं भक्तोंका दास भक्त मेरे मुकुटमणि।' ऐसे	भगवान्श्री यहाँ सब परहितकारी भक्तोंको सचेत करते
परिहतकारिताकी पावन गंगामें डूबे भक्तोंकी आन्तरिक	हैं—
दिव्य भावनाको पुन:-पुन: नमन करते हैं—	'सन्नियम्येन्द्रियग्रामं सर्वत्र समबुद्धयः।'
न त्वहं कामये राज्यं न स्वर्गं नापुनर्भवम्।	(गीता १२।४)
कामये दुःखतप्तानां प्राणिनामार्तिनाशनम्॥	अर्थात् सभी इन्द्रियाँ वशमें करते हुए योगी सभीमें
मेरे प्राणप्रिय! यदि आप मुझपर प्रसन्न हैं तो सुनो।	समबुद्धि रखे।
मुझे राज्य-वैभव नहीं चाहिये। स्वर्ग-सुखकी भी चाहना	आज प्रत्येक व्यक्ति शान्ति तो चाहता है, परंतु
नहीं, मुक्तिका आनन्द भी नहीं चाहिये। मात्र एक प्रबल	दूसरोंको दु:ख देकर, यह कदाचित् सम्भव नहीं। दु:ख
इच्छा है कि दु:खोंकी भड़कती आगमें जलते हुए, तपते	दोंगे तो दु:ख मिलेगा, सुख दोंगे तो सुख निश्चितरूपसे
हुए प्राणियोंके सब कष्ट दूर हो जायँ।	मिलेगा। प्रसिद्ध भी है—जैसा बोओगे, वैसा काटोगे।

अङ्क ]	
<u></u>	
करम प्रधान बिस्व करि राखा। जो जस करइ सो तस फलु चाखा॥	करो ! आज्ञापालन करो ! इस प्रकार आत्मज्ञान-ब्रह्मज्ञान
यदि एक हाथ दूसरे हाथको चन्दन लगाता है तो	एवं तत्त्वज्ञान शिष्यके अन्तःकरणमें स्वतः संचारित हो
जिस हाथपर चन्दन लगा है, वह तो शीतल होगा।	जाता है।
साथ-ही-साथ जिस हाथने चन्दन लगाया है, वह भी	आदिगुरुशंकराचार्यजीके एक पट्ट शिष्य थे—
ठण्डा होगा।	त्रोटकाचार्य! वे मन्दबुद्धि, पढ़ने-लिखनेमें कमजोर, परंतु
एतदर्थ सेवाके दिव्य गुणको साकार करनेके लिये	गुरुकी आज्ञा एवं सेवामें सदैव तत्पर रहते थे। एक दिन
मानवको चाहिये कि वह सहयोगी, उपयोगी एवं उद्योगी	सभी शिष्य कक्षामें उपस्थित हो गये, पर त्रोटक नहीं
(Helpful, useful and fruitful) बन जीवन व्यतीत करे।	आये। गुरुजीने पूछा—'त्रोटक कहाँ है ? पढ़ाई शुरू की
भजनका व्यापक रूप है—अपनी ओरसे कभी भी	जाय।' सब शिष्योंने एक स्वरसे कहा—'वह तो पढ़ना-
किसीको किसी प्रकारका कष्ट न पहुँचाना। सबकी	लिखना जानता नहीं। कृपया उसकी प्रतीक्षाकर समय
सेवामें युक्त होकर सुख पहुँचानेकी निष्काम भावपूर्ण	नष्ट न करें तो अच्छा है।' परंतु गुरुजी जानते थे कि
चेष्टा ही व्यापक भजन कहलाता है। हम मालाजप भी	त्रोटक दिन-रात मेरी निष्काम भावसे सेवा करता है।
करें—भजन भी करें, परंतु संसारमें, व्यवहारमें तथा	चर्चा चल ही रही थी—त्रोटक कक्षामें आ गये। पसीनेसे
व्यापारमें दूसरोंको दु:ख पहुँचायें, धोखा-धड़ी करें,	लथपथ थे। आते ही गुरुचरणोंमें नमन किया। गुरुजीने
बेईमानी करें, राग-द्वेष, लड़ाई-झगड़ा तथा परनिन्दा,	विलम्बसे आनेका कारण पूछा? विनम्रभावसे उत्तर देते
परदोषदर्शनमें अमूल्य समय गवायें तो भजन मात्र	हुए कहा—'गुरुवर! आपके वस्त्र धो रहा था। विलम्ब
पाखण्ड बनकर रह जायगा। सारांशमें सबका दु:ख बँटा	हो गया, क्षमा चाहता हूँ', परंतु गुरुजीने कहा—'बेटे!
एवं मिटाकर सुख पहुँचानेकी भरपूर चेष्टा करनेसे मानव	आज मेरा स्वास्थ्य ठीक नहीं। मैं विद्यार्थियोंको पढ़ा
सदैव शान्त-प्रशान्त रहता है। वह शीघ्र ही ईश्वरदर्शनोंका	नहीं पाऊँगा, आज तुम इन्हें पढ़ा दो।' त्रोटक घबरा
सुयोग्य अधिकारी बन जाता है।	गये। कुछ देर बाद बोले—गुरुजी! मैं तो इन सभी
निष्काम सेवाका आदर्श स्थापित करते हुए भगवान्	विद्यार्थियोंसे मन्दबुद्धि हूँ। ये सब बड़े विद्वान् हैं, समस्त
श्रीकृष्णने पाण्डवोंके राजसूययज्ञमें स्वयं जूठी पत्तलें	शास्त्रोंके ज्ञाता हैं, मैं इन्हें कैसे पढ़ा सकूँगा। मुझे खुद
उठायीं और आगन्तुकोंका पाद-प्रक्षालन किया। गुरु-	लिखना-पढ़ना नहीं आता।' इस बातपर सभी विद्यार्थी
आश्रममें झाड़्तक लगायी। सेवाके प्रसंगमें एक और	व्यंग्यात्मक हँसी हँसने लगे, परंतु गुरुदेवने त्रोटकको
रहस्यमय तथ्ये प्रकट करना अनिवार्य है कि सेवा छोटी-	अपने आसनपर बैठा दिया। गुरुदेवकी आज्ञा सर्वोपरि
बड़ी नहीं होती है। जिस सेवाकार्यमें आसक्ति नहीं,	होती है। गुरुकृपा तथा निष्काम सेवाके प्रभावसे उसने
अभिमान नहीं, कोई अपना स्वार्थ नहीं, वह छोटी सेवा	ऐसा अद्भुत प्रवचन किया कि सभी सहपाठी सुनकर दंग
भी महान् सेवा बन जाती है।	रह गये। बड़ा आश्चर्य हुआ कि इतना ज्ञान त्रोटकको
गीताकार भगवान् श्रीकृष्ण सेवाकी दिव्य प्रेरणा	कहाँसे मिला! आज भी त्रोटकाचार्यका नाम
देते हैं—	आदिगुरुशंकराचार्यके शिष्योंमें बड़े गर्वसे लिया जाता
'तद्विद्धि प्रणिपातेन परिप्रश्नेन सेवया।'	है।
(गीता ४।३४)	अत: निष्कामभावसे की गयी सेवा कभी निष्फल
पुनश्च <b>—'देवद्विजगुरुप्राज्ञपूजनं'</b> (गीता १७।१४)	नहीं जाती। निष्कामसेवी सदा सर्वदा सर्वत्र पूजा जाता
<b>'आचार्योपासनं'</b> (गीता १३।७)।	है। भगवान् भी ऐसे सेवाभावीके ऋणी एवं आभारी हो
Hinखिः।sभा चर्माई ट्येनित श्रह्णार सेंग्नासकृतः / वड्हे !gg/खhaनाते हैं।MADE WITH LOVE BY Avinash/Sha	

\* सेवा-निष्ठाका चमत्कार \* अङ्क ]

# सेवा-निष्ठाका चमत्कार

मर्यादापुरुषोत्तम विश्वसम्राट् श्रीराघवेन्द्र अयोध्याके सिंहासनपर आसीन थे। सभी भाई चाहते थे कि प्रभुकी सेवाका कुछ अवसर उन्हें मिले, किंतु हनुमान्जी प्रभुकी सेवामें इतने तत्पर रहते थे कि कोई सेवा उनसे बचती नहीं थी। सब छोटी-बडी सेवा वे अकेले ही कर लेते थे। इससे घबराकर भाइयोंने माता जानकीजीकी शरण ली। श्रीजानकीजीकी अनुमितसे भरतजी, लक्ष्मणजी और शत्रुघ्नकुमारने मिलकर एक योजना बनायी। प्रभुकी समस्त सेवाओंकी सूची बनायी गयी। कौन-सी सेवा कब कौन करेगा, यह उसमें लिखा गया। जब हनुमान्जी प्रात: सरयू-स्नान करने गये, उस अवसरका लाभ उठाकर प्रभुके सम्मुख

वह सूची रख दी गयी। प्रभुने देखा कि उनके तीनों भाई हाथ जोड़े खड़े हैं। सूचीमें हनुमान्जीका कहीं नाम ही श्रीहनुमान्जी स्नान करके लौटे और प्रभुकी सेवाके 'प्रभुने जो विधान किया है या जिसे स्वीकार किया

नहीं था। सर्वज्ञ रघुनाथजी मुसकराये। उन्होंने चुपचाप सूचीपर अपनी स्वीकृतिके हस्ताक्षर कर दिये। लिये कुछ करने चले तो शत्रुघ्नकुमारने उन्हें रोक दिया—'हनुमान्जी! यह सेवा मेरी है। प्रभुने सबके लिये सेवाका विभाग कर दिया है।' है, वह मुझे सर्वथा मान्य है।' हनुमानजी खड़े हो गये। उन्होंने इच्छा की वह सूची देखनेकी और सूची देखकर बोले—'इस सूचीसे बची सेवा मैं करूँगा।' 'हाँ, आप सूचीसे बची सेवा कर लिया करें।' लक्ष्मणजीने हँसकर कह दिया। परंतु हनुमान्जी तो प्रभुकी स्वीकृतिकी प्रतीक्षामें उनका श्रीमुख देख रहे थे। मर्यादापुरुषोत्तमने स्वीकृति दे दी, तब पवनकुमार बोले-'प्रभु जब जम्हाई लेंगे तो मैं चुटकी बजानेकी सेवा करूँगा।' यह सेवा किसीके ध्यानमें आयी ही नहीं थी। अब

भोजन आदिके समय हनुमानुजी प्रभुके साथ बने रहे।

तो प्रभु स्वीकार कर चुके थे। श्रीहनुमान्जी प्रभुके सिंहासनके सामने बैठ गये। उन्हें एकटक प्रभुके श्रीमुखकी ओर देखना था; क्योंकि जम्हाई आनेका कोई समय तो है नहीं। दिनभर किसी प्रकार बीत गया। स्नान,

श्रीजानकीजीने पूछा—'यह क्या हो गया आपको ?' परंतु प्रभु मुख बन्द न करें तो बोलें कैसे ? घबराकर श्रीजानकीजीने माता कौसल्याको समाचार दिया। माता दौडी आयीं। थोडी देरमें तो बात पूरे राजभवनमें फैल गयी। सभी माताएँ, सब भाई एकत्र हो गये। सब चिकत, सब दुखी, किंतु किसीको कुछ सूझता नहीं। प्रभुका मुख खुला है, वे किसीके प्रश्नका कोई उत्तर नहीं दे रहे हैं। अन्तमें महर्षि वसिष्ठजीको सूचना दी गयी। वे तपोधन रात्रिमें राजभवन पधारे। प्रभुने उनके चरणोंमें मस्तक रखा; किंतु मुख खुला रहा, कुछ बोले नहीं। सर्वज्ञ महर्षिने इधर-उधर देखकर कहा—'हनुमान् कहाँ हैं? उन्हें बुलाओ तो।' सेवक दौड़े हनुमान्जीको ढूँढने। हनुमान्जी जैसे ही प्रभुके सम्मुख आये, प्रभुने मुख बन्द कर लिया। अब विसष्ठजीने हनुमान्जीसे पूछा—'तुम कर क्या रहे थे ?' हनुमान्जी बोले—'मेरा कार्य है—प्रभुको जम्हाई आये तो चुटकी बजाना। प्रभुको जम्हाई कब आयेगी,

यह तो कुछ पता है नहीं। सेवामें त्रुटि न हो, इसलिये

अब मर्यादापुरुषोत्तम बोले—'हनुमान् चुटकी बजाते

में बराबर चुटकी बजा रहा था।'

रात्रि हुई, प्रभु अपने अन्त:पुरमें विश्राम करने पधारे, तब

हनुमान्जी भी पीछे-पीछे चले। अन्त:पुरके द्वारपर उन्हें सेविकाने रोक दिया—'आप भीतर नहीं जा सकते।'

जाकर बैठ गये और लगे चुटकी बजाने। उधर अन्त:पुरमें

प्रभुने जम्हाई लेनेको मुख खोला तो खोले ही रहे।

हनुमान्जी वहाँसे सीधे राजभवनके ऊपर एक कँगूरेपर

रहस्य प्रकट हो गया। महर्षि विदा हो गये। भरतजीने, अन्य भाइयोंने और श्रीजानकीजीने भी कहा— 'पवनकुमार! तुम यह चुटकी बजाना छोड़ो। पहले जैसे सेवा करते थे, वैसे ही सेवा करते रहो।' यह मैया सीताजी और भरत-लक्ष्मणजी आदिका विनोद था। वे श्रीहनुमान्जीको सेवासे वंचित थोडे ही करना चाहते थे। [श्री 'चक्र' जी]

रहें तो रामको जम्हाई आती ही रहनी चाहिये।'

\* राम सदा सेवक रुचि राखी \* [ सेवा-'सब तें सेवक धरमु कठोरा' [ श्रीभरतजीका सेवादर्शन ] ( आचार्य पं० श्रीचन्द्रभूषणजी ओझा ) प्रस्तुत अर्धाली भक्तशिरोमणि महाकवि तुलसीदासजी-२।२८९।८) अर्थात् भरतलालजीका साधन और सिद्धि प्रणीत भगवान् श्रीरामके विग्रहावतार श्रीरामचरितमानसके दोनों रामपदप्रेम ही है। साध्य रामपदप्रेम ही है न कि

हृदय अयोध्याकाण्डके दोहा दो सौ तीन की सातवीं रामपद। रामप्रेम ज्यों-ज्यों वृद्धिंगत हो, त्यों-त्यों रामपदका सान्निध्य आप-ही-आप सुलभ होता जाता है। सेवक

चौपाई है। यह उस समयका प्रसंग है, जब भरतलालजी भगवान् श्रीरामको वनसे लौटानेके लिये जाते हैं।

चित्रकूटकी इस यात्रामें भरतजी पैदल चल रहे हैं। उस

समय उत्तम सेवकोंके बारंबार घोडेपर सवार होनेके

आग्रहके उत्तरमें वे कहते हैं कि मेरे प्रभु श्रीरामजी तो इसी मार्गसे पैदल गये हैं और मेरे लिये हाथी-घोडे

बनाये गये हैं ? मुझे तो ऐसा उचित है कि जिस मार्गसे मेरे स्वामी पैदल गये हैं, उसपर मेरा पैर न पड़े और मैं सिरके बल जाऊँ—

सिर भर जाउँ उचित अस मोरा। सब तें सेवक धरमु कठोरा॥ (रा०च०मा० २।२०३।७) सेवकधर्म सबसे कठिन धर्म है। इसके आगे सभी

धर्म सुगम दीख पड़ते हैं। यथा—'सेवाधर्मः परमगहनो योगिनामप्यगम्यः' अर्थात् सेवाधर्म ऐसा कठिन है कि

योगियोंको भी अगम है। सेवकधर्म मानवीय सद्गुणोंमें सर्वोपरि है। इस धर्मको वही धारण कर सकता है, जो अपने निहित स्वार्थ और अहंकारके भावसे ऊँचा उठ

चुका हो। कामनारहित तथा स्वार्थरहित कर्मोंमें ही सेवाका सार और सुफल निहित है। 'सेवक हित साहिब सेवकाई' (रा०च०मा०

२। २६८। ४) अर्थात् अपने स्वामीकी सेवामें ही सेवककी भलाई है। यही कारण है कि वेद, शास्त्रों और पुराणोंमें

यह प्रसिद्ध है कि सेवाधर्म कठिन है, ऐसा संसार जानता

है—'आगम निगम प्रसिद्ध पुराना। सेवाधरम् कठिन

जगु जाना॥' (रा०च०मा० २।२९३।७)

भरतजीके ननिहालसे अयोध्या-आगमनपर इक्ष्वाकु-कुलके गुरु तथा धर्मके व्याख्याता वसिष्ठजी उनके

चरितार्थ है।

सम्मुख एक प्रस्ताव रखते हैं कि महाराज दशरथ प्राणोंका त्याग कर चुके हैं, श्रीरामजी वनमें हैं, अयोध्या राजाविहीन है। अत: हे भरत! सुरक्षाकी दृष्टिसे राज्यपद

वहीं होता है जो सेवा करता है, मात्र वचनोंसे सेवक

बननेवाला सेवक नहीं होता है। यद्यपि भगवान् श्रीरामको तो सभी प्रिय हैं, देवता भी प्रिय हैं, परंतु सेवक परमप्रिय

है; क्योंकि वह अनन्यगति होता है अर्थात् उसकी

दृढ़मतिमें जड़-चेतन सम्पूर्ण जगत् स्वामी भगवान्

श्रीरामका स्वरूप है और वह अपनेको उनका सेवक

मैं सेवक सचराचर रूप स्वामि भगवंत॥

सद्बुद्धिसे मण्डित हैं। उनके मनकी शुचिता यह है कि

स्वप्नमें भी उन्हें दूसरे देव एवं अन्य किसीका भी भरोसा

नहीं है। वचनकी पवित्रता यह है कि प्रभुका गुणानुवाद

छोड़ अन्य कोई वचन भरतलालजीके मुँहसे नहीं

निकलता है और शरीर तथा कर्मकी शुचिता यह है

कि तनसे भागवत-धर्म छोड़कर दूसरे धर्मको वे धर्म

नहीं समझते हैं और न ही अन्य कर्म ही करते हैं-**'सपनेहुँ जान न दूसर धर्मा'** भरतसरिस सेवकोंके लिये

सेवक भरतलालजी पवित्र, सुशील और उत्तम

स्वीकारता है। यथा—

(रा०च०मा० ४।३)

धर्मसार, प्रेममूर्ति भरत सेवकधर्मके चूड़ान्त पुरोधा हैं। '*साधन सिद्धि राम पग नेहू।*' (रा॰च॰मा॰

भी कहती है-

ग्रहण करो-यही महाराज दशरथकी आज्ञा है। नीति

•	धरमु कठोरा'* १२९
<u> </u>	क्रक्रक्रक्रक्रक्रक्रक्रक्रक्रक्रक्रक्रक
ते भाजन सुख सुजस के बसिंह अमरपति ऐन॥	है। श्रीभरतलालजीने इसी परिप्रेक्ष्यमें सभी पूजनीय
(रा०च०मा० २।१७४)	वृन्दसे यह निवेदन किया कि आपलोग मुझे राज्यपद
गुरु विसष्ठके वचनोंका समर्थन करते हुए मन्त्रियोंने	देना चाह रहे हैं, परंतु मैं तो श्रीरघुनाथपदका अभिलाषी
कहा—' <b>कीजिअ गुर आयसु अवसि कहिं सचिव</b>	हूँ, उसकी प्राप्तिके बिना मुझे हृदयकी सन्तृप्ति, चित्तकी
<b>कर जोरि।</b> '(रा॰च॰मा॰ २।१७५) अर्थात् हे भरतजी!	सन्तुष्टि और मनकी शान्ति नहीं मिल रही है।
आप गुरुजीकी आज्ञाका पालन अवश्य कीजिये। उन	आपनि दारुन दीनता कहउँ सबिह सिरु नाइ।
लोगोंने प्रस्तावमें अपनी ओरसे एक कड़ी जोड़ दी है—	देखें बिनु रघुनाथ पद जिय कै जरिन न जाइ॥
'रघुपति आएँ उचित जस तस तब करब बहोरि॥'	(रा०च०मा० २।१८२)
अर्थात् श्रीराघवेन्द्रके आनेपर फिर आपको जैसा उचित	अर्थात् सेवकशिरोमणि भरतलालजीने कहा कि मैं
लगे वैसा कर सकते हैं। तात्पर्य यह था कि यदि आप	अपनी दीनता सिर झुकाकर कहता हूँ कि प्रभु श्रीरामके
सदाके लिये अयोध्याका राज्यपद स्वीकार नहीं करना	चरणारविन्दको देखे बिना मेरे हृदयकी जलन नहीं मिट
चाहें तो मर्यादापुरुषोत्तम राघवेन्द्रके आनेतक स्वीकार	सकती है। भरतजीके इस प्रस्तावकी सराहना प्रत्येक
कर लें।	अयोध्यावासी करने लगे कि भरतजी श्रीरामके प्रेमकी
रघुकुलगुरु वसिष्ठके प्रस्तावका समर्थन तथा	साक्षात् मूर्ति हैं—
अनुमोदन करती हुई कौसल्या अम्बा बोलीं—	भरतिह कहिंह सराहि सराही। राम प्रेम मूरित तनु आही॥
कौसल्या धरि धीरजु कहई। पूत पथ्य गुर आयसु अहई॥	(रा०च०मा० २।१८४।४)
(रा०च०मा० २।१७६।१)	वे सभी अयोध्यावासी जो गुरु वसिष्ठका समर्थन
अर्थात् हे पुत्र भरत! गुरुदेवकी आज्ञा चाहे प्रिय	कर रहे थे, वे ही लोग आज भरतजीका समर्थन करते
लगे या अप्रिय, स्वीकार कर लो, जैसे रोगी वैद्यद्वारा	हुए कहने लगे—
बतलाये गये पथ्यको भले ही वह रुचिकर न हो,	अवसि चलिअ बन रामु जहँ भरत मंत्रु भल कीन्ह।
रोगनाशके लिये स्वीकार कर लेता है, उसी प्रकार	सोक सिंधु बूड़त सबहि तुम्ह अवलंबनु दीन्ह॥
गुरुदेवकी आज्ञा पथ्य मानकर ग्रहण कर लो। जिस	(रा०च०मा० २।१८४)
राज्यपदको स्वीकारनेकी बात भरतजीसे कही जा रही	अर्थात् हे भरतजी! वनको अवश्य चलिये जहाँ
है। उस अयोध्या-राज्यपदका वर्णन देखें—	श्रीराम हैं, आपने बड़ी अच्छी सलाह दी, जो शोकसागरमें
अवध राजु सुर राजु सिहाई। दसरथ धनु सुनि धनदु लजाई॥	डूबते हुए लोगोंको उबार दिया।
(रा०च०मा० २। ३२४।६)	गुरु वसिष्ठ समाज और समयके ज्ञाता हैं। उन्होंने
अर्थात् अवधराज्य ऐसा है, जिसकी इन्द्र भी	विचारकर देखा कि अयोध्यामें भावनाके प्रवाहमें विवेक
सराहना करते हैं और कुबेर जिसका ऐश्वर्य सुनकर	और धर्मका भान नहीं रह गया है, इस समय भरतके
लजा जाते हैं।	विरुद्ध अपनी बात कहना उपयुक्त नहीं है। उनको यह
पर धन्य हैं सेवामूर्ति और प्रेममूर्ति भरतजी, जिनका	अनुभव होने लगा है कि भरतकी थाह पाना असम्भव है—
चरित्र इतना दृढ़ है कि इन सभी सुधीजनोंके आदेश और	भरत महा महिमा जलरासी। मुनि मति ठाढ़ि तीर अबला सी॥
आग्रहसे मोहित नहीं हुए। इसका तात्पर्य यह नहीं है	गा चह पार जतनु हियँ हेरा। पावति नाव न बोहितु बेरा॥
कि उनका हृदय कठोर है। उनके चरित्रमें दृढ़ता और	(रा०च०मा० २ । २५७ । २–३)

\* राम सदा सेवक रुचि राखी \* [ सेवा-अर्थात् जिस प्रकार समुद्रके किनारे खड़ी एक योगेश्वर, रसेश्वर श्रीकृष्णने गीतामें यही कहा है कि जो अबला स्त्री समुद्रको पार करनेकी व्यर्थ चेष्टा करे अनन्य सेवक भक्तलोग मुझे चिन्तन करते हुए भलीभाँति और निराश हो जाय, उसी प्रकार गुरु वसिष्ठ भरतको मेरी उपासना करते हैं, उन नित्ययुक्त सेवकों, भक्तोंका पार पाना चाहते हैं, पर बारंबार उन्हें निराशा ही हाथ योगक्षेम मैं स्वयं वहन करता हूँ— लगती है। तेषां नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यहम्॥ सेवक भरतके उत्तम सद्बुद्धि और सेव्य (गीता ९। २२) श्रीयुगलसरकारके प्रति दृढ् श्रद्धा तथा विश्वासका ही यद्यपि अभिमान आनेसे ज्ञानका नाश होता है, यह परिणाम है कि वे कहते हैं कि भगवान् श्रीराम जैसे—जाति, यौवन, विद्या, बल और ऐश्वर्य आदि। वनवासको भेज दिये गये, संसारका कोई व्यक्ति ऐसा इनके नष्ट हुए बिना जीवको सुखकी प्राप्ति नहीं होती— नहीं कह सकता है कि वन भेजनेमें मेरी राय नहीं होगी, 'तुलसिदास मैं-मोर गये बिनु जिउ सुख कबहुँ न परंतु मुझे पूर्ण विश्वास है कि मेरे भैया श्रीराम और **पावै॥**' (विनय-पत्रिका १२०) परंतु ऐसा अभिमान भूलकर भी न मिटे, प्रत्युत सदा बना रहे कि मैं सेवक माता जानकी ऐसा नहीं कह सकते हैं-हूँ और रघुनाथजी मेरे स्वामी हैं; क्योंकि इस अभिमानके परिहरि रामु सीय जग माहीं। कोउ न कहिहि मोर मत नाहीं॥ नाशसे सेवकधर्मका नाश है-(रा०च०मा० २।१८२।३) अर्थात् सीतारामको छोड़कर जगत्में कोई नहीं अस अभिमान जाइ जनि भोरे। मैं सेवक रघुपति पति मोरे॥ कहता कि मेरी सम्मति वनवासमें नहीं थी। भरतजी आगे (रा०च०मा० ३।११।२१) कहते हैं कि चित्रकूट जानेके अतिरिक्त प्रभुके दर्शन ऐसे सेवक भरतके विषयमें गुरु वसिष्ठ श्रीरामप्रभुसे कह रहे हैं कि श्रीराम! मैं तो तुम्हारे धर्म और महाराज करनेके अलावा मुझे दूसरा उपाय नहीं सूझता है, बिना रघुवरके मेरे हृदयको कौन जान सकता है? '*जद्यपि मैं* दशरथके धर्मकी रक्षाहेतु दाँव लगाने आया था, परंतु अनभल अपराधीं ' टेढ़ा हूँ, तो भी मैं तो शिशु और कठोरधर्मा सेवक भरतके सेवाधर्मसे ऐसा बँध गया हँ सेवक ही हूँ अर्थात् प्रभु मेरा अपराध मनमें क्यों धरने कि उसीकी ओरसे बोलना पड़ रहा है। अब मेरी बुद्धि लगे? मैं बचपनसे ही प्रभु श्रीरामका सेवक हूँ और स्वतन्त्र नहीं है, वह तो भरतकी सेवा-भक्तिके वशमें हो शिशुसेवककी रक्षा प्रभु श्रीराम स्वयं करते हैं 'बालक गयी है—**'तेहि तें कहउँ बहोरि बहोरी। भरत भगति** सृत सम दास अमानी॥' 'करउँ सदा तिन्ह कै **बस भइ मित मोरी॥**' (रा०च०मा० २।२५८।७) इस स्थितिको देखकर भगवान् श्रीरामने भरतलालजीसे रखवारी। जिमि बालक राखड़ महतारी॥' सेवक स्वयं स्वीकारता है कि उसमें अनेक कहा—'भरत! तुम बहुत सौभाग्यशाली हो। शिष्य यदि गुरुके चरणोंमें सेवाधर्मसे प्रीति करे तो वह धन्य है, पर अवगुण हैं, परंतु स्वाभिमानके साथ एक गुणके कारण अभय और निश्चिन्त रहता है और वह गुण है अपने यदि गुरु ही शिष्यसे अनुराग करने लगे तो फिर उसकी धन्यताका क्या कहना! स्वामीका आश्रय। जे गुर पद अंबुज अनुरागी। ते लोकहुँ बेदहुँ बड़भागी॥ सेवक सुत पति मातु भरोसें। रहइ असोच बनइ प्रभु पोसें॥ (रा०च०मा० ५।३।४) राउर जा पर अस अनुरागू। को कहि सकइ भरत कर भागू॥ अर्थात् सेवक स्वामीके और सुत माताके भरोसे (रा०च०मा० २।२५९।५-६) निश्चिन्त रहता है तो प्रभुको पालन करते ही बनता है। भगवान् श्रीराम कह रहे हैं कि भरत! मैं तो केवल Hinduism Discord Server https://dsc.gg/dharma | MADE WITH LOVE BY Ayinash/Sha

	धरमु कठोरा'* १३१
**************	
सत्यके लिये मेरा तथा मेरे प्रेममें अपने शरीरका त्याग	बुद्धि नीच है। सेवकका हित तो यही है कि सम्पूर्ण
कर दिया। उनके वचनोंको मेटते मनमें सोच होता है।	सुखों और लोभोंको छोड़कर स्वामीकी सेवा करे अर्थात्
पर पुनरिप आज मैं उनकी अपेक्षा तुम्हारे वचनोंको	मन-कर्म-वचन-तीनोंसे सेवा करे।
अधिक महत्त्व देता हूँ — 'तेहि तें अधिक तुम्हार	जब भरत और श्रीरामका संवाद हुआ तो देवताओंने
<b>सँकोचू॥</b> ' भरत! तुम मुझसे जो करानेको कहोगे, मैं	एक नारा लगाया। नारा लगाते समय नियम तो यह है
वही करूँगा 'अविस जो कहहु चहउँ सोइ कीन्हा॥'	कि पहले बड़े की जय बोली जाय, फिर छोटेकी। पर
अर्थात् यदि भरत प्रभुसे लौटनेको कहें तो वे उसके लिये	देवताओंका नारा देखें—
भी तैयार हैं तो क्या भगवान् श्रीराम धर्म तथा सत्यका	धन्य भरत जय राम गोसाईं। कहत देव हरषत बरिआईं॥
त्याग कर सकते हैं ? ऐसी बात नहीं। भगवान् श्रीराम	(रा०च०मा० २।३०९।१)
ही 'रामो विग्रहवान् धर्मः' अर्थात् साक्षात् विग्रहवान्	अर्थात् धन्य हो भरत! जय हो भगवान् श्रीरामकी।
धर्म हैं—यही मानसका भी सूत्र है। धर्मकी वास्तविक	इसका गूढार्थ यह है कि भगवान् श्रीराम असुरोंका
व्याख्या यह है, जिससे सभीके धर्मकी रक्षा हो वही	विनाशकर सुरोंका कष्ट दूर कर देंगे, इसलिये उनकी
सही धर्म है—'सब कर धरम सहित हित होई॥'	जय-जयकार की गयी है। श्रीभरतजी सन्त हैं, भक्त हैं
चित्रकूटमें भगवान् श्रीरामने भरतके कहनेसे अयोध्या	और सेवक हैं, उनकी परम स्तुतिहेतु धन्य कहा गया है;
लौटनेकी जो बात कही, उसमें सत्य और असत्यके बीच	क्योंकि यदि वे प्रभुसे लौट चलनेको कहते तो प्रभु लौट
चुनावकी नहीं अपितु सेवकधर्म और सेव्य-धर्मके सत्य	जाते, पर आज प्रभु श्रीरामका जय-जयकार न होता,
और असत्यके बीच चुनावकी है। उदाहरणार्थ—द्वापरयुगमें	यह तो श्रीभरत ही थे जिन्होंने दोनों सत्यकी रक्षा की
महापुरुष महारथी भीष्म 'आज जो हरिहिं न सस्त्र	तथा अपने जीवनमें धर्मसारका रूप प्रस्तुत किया।
गहाऊँ।'तथा लीलाधर रसेश्वर योगेश्वर श्रीकृष्ण अस्त्र	श्रीभरतजीने सेवक और भक्तके रूपमें प्रभु
न उठानेकी प्रतिज्ञा करते हैं। भगवान् श्रीकृष्ण अपने	श्रीरामको ही आसक्ति और अहंकारसे रहित होकर
सत्यकी परवाह न करते हुए शस्त्र ग्रहण करते हैं,	<i>'संपति सब रघुपति कै आही'</i> स्वीकारा है। जिसने
भीष्मके सत्यकी रक्षा करते हैं। भीष्मने अपना सत्य	समस्त वस्तुओंका स्वामी ईश्वरको माना, उसीने ठीक-
बचानेके लिये भगवान्को असत्यवादी सिद्ध कर दिया।	ठीक धर्मको समझा। इसीलिये गोस्वामीजी उनकी
परंतु भरतजी इतने महान् सेवक हैं कि जब सेव्य,	वन्दना में कहते हैं—
आराध्य भगवान् श्रीरामको उनके सत्यकी चिन्ता हुई तो	राम चरन पंकज मन जासू। लुबुध मधुप इव तजइ न पासू॥
सेवक भरतने कह दिया—'प्रभो! मैं आपको असत्य	(रा०च०मा० १ । १७ । ४)
बनाकर अपना सत्य बचाऊँ, यह नहीं हो सकता, जिस	अर्थात् जिनका मन श्रीरामचन्द्रजीके चरणकमलोंमें
प्रकार आप प्रसन्न हों, वही कीजिये'—	भ्रमरकी तरह लुब्ध है, उनका पास नहीं छोड़ता है।
जेहि बिधि प्रभु प्रसन्न मन होई। करुना सागर कीजिअ सोई॥	श्रीभरतलालजीमें सेवक तथा भक्तकी भाँति नेम और प्रेम
् (रा०च०मा० २। २६९। २)	दोनों ही भगवान् श्रीरामके चरणोंमें सदा रहते हैं। वे
अर्थात् यहाँ विजय न तो सेवककी हुई और न	प्रभुके चरणारविन्दोंके अनन्य और अकृत्रिम प्रेमी हैं,
सेव्यकी अपितु सत्यकी विजय हुई। इस प्रकार दोनोंके	यही सेवकका गुण है—
सत्यकी रक्षा हुई। भरतजीने कहा कि हे प्रभो! जो सेवक	परमारथ स्वारथ सुख सारे। भरत न सपनेहुँ मनहुँ निहारे॥
स्वामीको संकोचमें डालकर अपना भला चाहे उसकी	(रा०च०मा० २।२८९।७)

१३२ * राम सदा सेव	क रुचि राखी * [ सेवा-
\$\$\$\$\$\$\$\$\$\$\$\$\$\$\$\$\$\$\$\$\$\$\$\$\$\$\$\$\$\$\$\$\$\$\$\$\$\$	\$\$\$\$\$\$\$\$\$\$\$\$\$\$\$\$\$\$\$\$\$\$\$\$\$\$\$\$\$\$\$\$\$\$\$\$\$\$
अयोध्या लौटनेके लिये श्रीभरतजीने प्रभु श्रीरामसे	श्रीराम ही उनके साथ लौट रहे हैं—
कोई आधार माँगा, जिससे मनको सन्तोष और शान्ति	भरत मुदित अवलंब लहे तें। अस सुख जस सिय रामु रहे तें॥
मिले— <b>'बिनु अधार मन तोषु न साँती।'</b> प्रभु श्रीरामने	(रा०च०मा० २। ३१६।८)
उन्हें अपनी पादुका दे दी। भरतजीने उसे जब अपने	भगवान् श्रीरामने श्रीभरतलालजीको पादुका देकर
सिरपर रखा तब भगवान् श्रीरामने कहा—देखो तो तुमने	यह सन्देश दिया कि इस संसारमें चेतनमें चेतनका दर्शन
मुझसे आधार माँगा और मैंने तुम्हें भार दे दिया।	करनेवाले ही बहुत कम मिलते हैं, फिर जड़में चेतनको,
भरतजीने उत्तर दिया—प्रभो! पादुका पदके लिये होती	मुझको पहचान ले सकें, यह क्षमता तो तुम्हींमें है। तुम्हीं
है, परंतु चरणपादुका देकर आपने स्वीकार कर लिया कि	पादुकाके रूपमें मुझे पहचानोगे; क्योंकि अचेतनको
अयोध्याका राजपद आपका है, अब आप जैसा कहें	चेतन और चेतनको अचेतनके रूपमें देखनेका सामर्थ्य
राज्य चला दूँ। यह तो मेरे लिये ' <i>बिमल नयन सेवा</i>	मात्र तुम्हींमें है—
सुधरम के 'अर्थात् सेवारूपी सुधर्मके निमित्त निर्मल नेत्र	होत न भूतल भाउ भरत को। अचर सचर चर अचर करत को॥
है। जैसे नेत्र बिना कोई चल नहीं सकता, वैसे ही इनके	(रा०च०मा० २। २३८।८)
बिना कठिन सेवाधर्म नहीं चल सकता, बिना स्वामी	सेवकशिरोमणि श्रीभरतलालजी योगीकी स्थितिमें
सेवा कैसे सम्भव है। तात्पर्यार्थ यह है कि नेत्रसे देखनेसे	जगत्के समस्त दु:खोंसे निवृत्त होकर परमतत्त्व श्रीरामकी
सेवा ठीक-ठीक होती है, वैसे ही श्रीभरतजीके सेवासुधर्म	प्राप्ति कर लेते हैं—' <b>जनु जोगीं परमारथु पावा॥'</b>
खड़ाऊँसे बने।	वास्तवमें एक योगी कुशल सेवक ही हो सकता
गोस्वामी तुलसीदासजी दोहावली (४८२)–में लिखते	है। भरतलालजीकी तुलना विदेहराज जनकसे की गयी
हैं—'बिन आँखिन की पानहीं पहिचानत लखि	है—दोनोंकी मनोवृत्ति एक ही प्रकारकी है। जनकजीका
<b>पाय॥</b> ' अर्थात् अँधेरेमें यदि जूता पड़ा हो और	भगवान् श्रीरामके चरणोंमें गूढ़ प्रेम है और भरतजीके
पहननेवाला उसमें पैर डाले तो वह बता देगा कि मैं	बारेमें भी यही कहा गया है—
आपका हूँ या नहीं। यदि यह बात याद रहे कि जिसका	जनकजी—
पद है, उसीकी पादुका है तो संघर्षकी स्थिति हो ही नहीं	प्रनवउँ परिजन सहित बिदेहू। जाहि राम पद गूढ़ सनेहू॥
सकती। भरतजीने कहा—हमें यही याद बनी रहे कि	(रा०च०मा० १ । १७ । १)
अयोध्याकी सत्ताके एकमात्र अधिकारी प्रभु श्रीरामजी ही	भरतजी—
हैं, मुझे केवल उनकी आज्ञाका पालन करना है, सेवक	गूढ़ सनेह भरत मन माहीं। रहें नीक मोहि लागत नाहीं॥
बने रहना है, मेरे लिये यही अभीष्ट है। इसीलिये	(रा०च०मा० २। २८४।४)
भरतलालजी नित्यप्रति पादुकाओंका पूजन करते हैं	स्वामी और सेवकके रूपमें भरतलालजी श्रीरामजीकी
और सारा राज-काज पादुकाओंसे आज्ञा माँग-माँगकर	छाया हैं—'भरतहि जानि राम परिछाहीं॥'छायामें जो
चलाते हैं—	गति और क्रिया दिखलायी देती है, वह वास्तवमें
नित पूजत प्रभु पाँवरी प्रीति न हृदयँ समाति।	छायाकी अपनी गति या क्रिया नहीं होती है, वह न तो
मागि मागि आयसु करत राज काज बहु भाँति॥	कुछ सोचती है और न ही कोई सुख-दु:ख मानती है।
(रा०च०मा० २।३२५)	भरतजीने अपने मन-बुद्धि, चित्त और अहंकारको
चरणपादुकाको प्राप्तकर श्रीभरतलालजीको ऐसा	सम्पूर्णतया विलीन कर दिया है—' <b>मन बुधि चित</b>
लगा कि पादुकाके रूपमें श्रीसीताजी और भगवान्	अहिमिति विसराई॥' इस प्रकार सेवकके दायित्वको

अङ्क ] * मुनि सुतीक्ष्णर्ज	ोकी दास्यभक्ति * १३३
***************	***********************
पूर्णतया निर्वाह करते हुए भरतजीने अपनेको प्रभुके	त्यागी, सर्वथा नि:स्पृह, ब्रह्मनिष्ठ, ब्रह्मापुत्र वसिष्ठजीने
चरणोंमें पूर्ण समर्पित कर दिया है।	भरतलालजीको 'धर्मसार' भरत कहा—
सेवकके रूपमें श्रीभरतलालजीमें इतनी निरभिमानिता	समुझब कहब करब तुम्ह जोई। धरम सारु जग होइहि सोई॥
है कि वे किसीको भी आचार्यत्वका सम्मान दे सकते हैं।	(रा०च०मा० २। ३२३।८)
उनके चरित्रसे सेवक, साधक और भक्तको सेवा, साधनपथ	अर्थात् भरत! तुम् जो कहोगे, समझोगे और जो
और भक्तिका ज्ञान प्राप्त होता है। इसलिये वे सिद्ध और	करोगे—वही धर्मसार होगा। प्रायः व्यक्ति जो समझता
(सेवक) साधक दोनोंके लिये समान रूपसे प्रेरक हैं—	है, कभी-कभी कह नहीं पाता, कभी-कभी कर नहीं
निरखि सिद्ध साधक अनुरागे । सहज सनेहु सराहन लागे॥	पाता—यह अन्तर्द्वन्द्व सर्वत्र दृष्टिगोचर होता है। इसके
(रा०च०मा० २। २३८।७)	एकमात्र अपवाद भरतलालजी ही हैं। बहुधा समाजमें
सेवकको हाथ, पैर और नेत्रके समान होना चाहिये	अनेक दृष्टान्त देखनेको मिलते हैं कि तथाकथित सेवक
और स्वामी मुँहके समान होना चाहिये। किसी विपत्तिके	ही स्वामीका विनाश कर देता है, ऐसी विकृत परिस्थितिमें
आनेपर पहले ये ही सहायक होते हैं। ठीक इसी प्रकार	सेवकके रूपमें श्रीभरतलालजीका चरित्र प्रकाशस्तम्भका
स्वामी और सेवक भी होने चाहिये। तभी प्रत्येक कार्य	कार्य करता है।
सुसम्पन्न होगा। श्रीभरतलालजी इन्हीं अंगोंके समान प्रभु	सिय राम प्रेम पियूष पूरन होत जनमु न भरत को।
श्रीरामसे सम्बन्धका निर्वाह करते हैं।	मुनि मन अगम जम नियम सम दम बिषम ब्रत आचरत को॥
'सेवक कर पद नयन से मुख सो साहिबु होइ।'	दुख दाह दारिद दंभ दूषन सुजस मिस अपहरत को।
(रा०च०मा० २।३०६)	कलिकाल तुलसी से सठन्हि हठि राम सनमुख करत को॥
इसी सेवाधर्मकी उदात्तताके कारण ही परम	(रा०च०मा० २। ३२६ छन्द)
	<b></b>
मुनि सुतीक्ष्णर्ज	की दास्यभक्ति
्र ५      ( श्रीगजानन	
गोस्वामी श्रीतुलसीदासजीकृत श्रीरामचरितमानसके	प्रभुकी प्रतीक्षामें मुनि सुतीक्ष्णजीको कुछ सूझ नहीं
अरण्यकाण्डमें यह प्रसंग आया है कि ऋषि अगस्त्यजीके	रहा है। उन्हें दिशाभ्रम हो गया, ऐसेमें वे कभी घूमकर
शिष्य सुतीक्ष्णमुनि मन, वचन और कर्मसे श्रीरामजीके	फिर आगे चलने लगते हैं और कभी प्रभुके गुण गाकर
चरणोंके सेवक थे। वनगमनके दौरान जब सुतीक्ष्णजीको	नाचने लगते हैं। उन्हें यह भी सुध न रही कि मैं कौन
यह ज्ञात हुआ कि प्रभु श्रीराम सीताजी तथा लक्ष्मणजीसहित	हूँ और कहाँ जा रहा हूँ। दयानिधि श्रीरामजी वृक्षकी
वनकी ओर आ रहे हैं तो उन्हें अति प्रसन्नता हुई और यह	ओटमें खड़े रहकर यह सब देख रहे हैं। मुनिके अत्यन्त
भरोसा हुआ कि मैं इन नेत्रोंसे भवबन्धनसे छुड़ानेवाले प्रभु	प्रेमको देखकर भवभयभंजन रघुनाथजी मुनिके हृदयमें
श्रीरामके मुखारविन्दके दर्शन कर पाऊँगा, परंतु फिर मन	प्रकट हो गये। हृदयमें प्रभुके दर्शन पाकर मुनि बीच
सशंकित हो गया कि मेरे मनमें भक्ति, वैराग्य या ज्ञान नहीं	मार्गमें स्थिर होकर बैठ गये और शरीर रोमांचित हो
है और न मैंने सत्संग, योग, जप अथवा यज्ञ ही किया है	गया। रघुनाथजी उनकी यह दशा देखकर अति प्रसन्न
तो क्या फिर भी प्रभु श्रीराम मुझ अकिंचनपर दया करेंगे,	हुए और उन्होंने बहुत प्रकारसे मुनिको जगाया, परंतु
परंतु उन्हें इस बातसे मनमें ढाड़स पैदा हुआ कि जिनका	मुनि नहीं जागे। तब प्रभुने राजरूपको छिपा लिया और
कोई सहारा नहीं होता, उन्हें वे सहारा देते हैं।	अपना चतुर्भुज रूप प्रकट किया।

\* राम सदा सेवक रुचि राखी \* िसेवा-रमाबाई रानडेकी समाज-सेवा परिवार है। घरमें विभिन्न प्रकृतिके लोग होंगे। तू अपनी एक सुशिक्षित पुरुष अपनी निरक्षर पत्नीको कितना उन्नत कर सकता है, यदि स्त्री उसके साथ सहयोग कुलीनताका परिचय देना। तुझे चाहे जितना कष्ट हो, करे—यह रमाबाईके चरित्रसे स्पष्ट हो जाता है। सहन करना। किसीको उत्तर मत देना। किसीसे लड़ना मत। नौकरोंको भी डाँटना मत। तेरे मनको असह्य कष्ट रमाबाईका जन्म सातारा जिलेके कुर्लेकर कुटुम्बमें श्रीमाधवरावजीके यहाँ हुआ था। मार्गशीर्ष शुक्ल हो, तो भी पतिसे किसीकी निन्दा मत करना। इस एकादशी सन् १८७३ ई० को उनका ग्यारह वर्षकी प्रकारकी चुगली सर्वनाशकी जड़ है। मेरी इन बातोंपर अवस्थामें न्यायमूर्ति महादेव गोविन्द रानडेके साथ ध्यान रखेगी तो मुझे प्रसन्नता होगी। इससे विपरीत तेरा बर्ताव मैंने सुना तो मैं फिर कभी तुझसे मिलना भी नहीं

चाहँगा।'

विवाह हुआ। रमाबाईने अपनी पूजनीया माता उमाबाईके सम्बन्धमें लिखा है कि वे दिनभर ओषधियोंकी गोलियाँ बनाया

करती थीं। उन्हें वैद्यकका अच्छा ज्ञान था। रोगियोंकी

सेवा-शृश्रुषा तथा उनको ओषधि देनेमें वे व्यस्त रहती थीं। असमर्थ रोगियोंको घरपर रखकर उनकी चिकित्सा करती तथा रहने और पथ्यका प्रबन्ध भी। रोगियोंके मल-मूत्रादिको धोनेमें उन्हें कभी हिचक नहीं होती

थी। ओषधि तथा घरपर रह रहे रोगियोंके पथ्यका व्यय वे स्वयं अपने पाससे देती थीं। माधवरावजीने पत्नीको इस परोपकारमें यथेच्छ व्यय करनेकी आज्ञा

दे रखी थी। रमाबाईने माताके सम्बन्धमें और लिखा है कि सायंकाल बच्चोंको साथ बैठाकर वे पुराणोंकी कथाएँ सुनाया करतीं। बुआ उनका उपहास करती थीं कि बच्चे

इन गम्भीर चरितोंको क्या समझेंगे। बड़ी सरलतासे वे उत्तर दे देतीं कि मुझे तो कुत्ते-बिल्लियोंकी कहानियाँ

आती ही नहीं। पवित्र चरित्रोंको सुनानेसे अपना हृदय तो पवित्र होता ही है, साथ ही बच्चोंके हृदयमें उत्कृष्ट बीज बोया जाता है। जैसे भूमि होगी, वैसा पौधा हो

जायगा। कम-से-कम खराब पौधोंसे तो खेत बचा

उपदेश दिया था, वह भी अनुकरणीय है। उन्होंने कहा

रहेगा।

रमाबाईके पतिगृह जाते समय उनके पिताने जो

गया।

ऐसे सुयोग्य माता-पिताकी पुत्री धार्मिक, परोपकारी

एवं सहनशील होनी ही चाहिये। स्वयं रमादेवी इतनी

सुशील थीं कि बहुत छोटी अवस्थामें एक बार माताके

डाँटनेपर प्रत्युत्तर दे दिया उन्होंने, इसका इतना परिताप हुआ कि वह भोली बालिका चुपकेसे चाकू लेकर

भगवान् शंकरके मन्दिरमें पहुँची। 'प्रभो! माताको प्रत्युत्तर देनेकी अपेक्षा तो मेरा गूँगी हो जाना ही श्रेष्ठ

है।' ऐसा कहकर उसने अपनी जिह्वा काटकर शिवलिंगपर

चढ़ा दी। बालिका मूर्च्छित हो गयी। मन्दिरके पुजारीजीने

देखा। दौड़कर जीभका टुकड़ा उठाकर उन्होने उसके स्थानपर चिपकाया। ठीक चिकित्सासे टुकड़ा जुड़

पतिगृह पहुँचनेपर जस्टिस रानडेने देखा कि पत्नी अशिक्षिता है। उसी दिनसे उन्होंने उसे पढ़ाना प्रारम्भ किया। रमाबाईकी सास तथा ननदें इस शिक्षाकी विरोधी थीं। वे बार-बार रमाबाईको समझातीं कि पढ़ना बन्द कर दो। इस विरोधसे बचनेके लिये रमाबाई पतिदेवसे

रात्रिके पिछले पहरमें पढा करती थीं। रानडेजीने एक स्त्री शिक्षिका रख दी और रमाबाईका अध्ययन तीव्रगतिसे

चल पड़ा। मराठीका अभ्यास पूरा होनेपर अँगरेजी प्रारम्भ हुई। रमाबाई एक दिन बर्तन मल रही थी। पासमें

पड़े अँगरेजी समाचार-पत्रके टुकड़ेको वे कुतूहलवश थिं। पुत्रांड़ालू Discord Serven https://dsc.gg/dharmen स्मापि घरवालीकी पुनके कॅगेरेजी पांड़ीकी /पीता

\* रमाबाई रानडेकी समाज-सेवा \* अङ्क ] लग गया। स्त्रियोंमें हलचल मच गयी। अनेक प्रकारके इसी समय गोडबोले नामक एक डिप्टी-इन्स्पेक्टरने व्यंग्य और ताने सुनने पड़े। रमाबाईने सब सह लिया। पुष्पहारोंका थाल रमाबाईके सम्मुख कर दिया। रमाबाईने पतिसे उन्होंने कभी किसीकी शिकायत न की। थाल उठाया। एक-एक हार तीनों यूरोपियन महिलाओंको जस्टिस रानडेकी बदली पुनासे नासिक हो गयी। पहनाकर वे बैठ गयीं। थालीमें एक हार अछूता पड़ा रहा। डिप्टी साहबने उसे मिस्टर कागड़को पहनानेको यहाँ आनेपर घरका पूरा भार रमाबाईपर पड़ा। वे प्रात: चार बजे उठ जातीं। अब भी स्वयं चौका-बर्तन करती कहा तो रमाबाईने डाँट दिया—'आपको लज्जा नहीं आती!' तुरन्त ही देशमुखजीने उठकर वह माला मिस्टर थीं। भोजन बनातीं और पतिदेवको भोजन कराके उनके कोर्ट जानेके वस्त्र ठीक करके उन्हें देतीं। पुस्तकें तथा कागड़को पहना दी। लिखने-पढनेकी सामग्री भी पतिकी वही ठीक करतीं। पतिके पूछनेपर रमाबाईने कहा था 'मैं ईसाई होती भोजनादिसे निवृत्त होकर पढने बैठ जातीं और जस्टिस तो मुझे संकोच न होता। मुझे तो क्रोध आ रहा था कि साहबके लौटनेके पूर्व पाठ सम्पूर्ण कर लेतीं। जज पढ़ा-लिखा ब्राह्मण गोडबोले मुझसे ऐसा अनुरोध कर साहबका आठ सौ रुपया मासिक वेतन उनके ही हाथमें कैसे सका।' अनेक स्थानोंमें घूम-फिरकर जस्टिस रानडेकी आता था। घरके व्ययका पूरा प्रबन्ध तथा हिसाब रखना उन्होंके जिम्मे था। पतिसे पूछे बिना अतिरिक्त व्ययमें बदली पूनामें हो गयी। यहाँ पण्डिता रमाबाईसे इनका कभी एक पैसा भी उन्होंने व्यय नहीं किया। इस प्रकार परिचय हुआ। घरकी पूरी व्यवस्थाका संचालन करते हुए उनका सन् १८८६ ई० में रानडे साहब सरकारी कामसे कलकत्ता गये थे। वहाँ कुछ महीने रुकनेकी अवधिमें अध्ययन चलता रहा। इस समय रावबहादुर गोपालराव देशमुख संयुक्त दम्पतीने बँगला सीख लिया। वे भली प्रकार समाचार जज थे। रमाबाईको इनके कुटुम्बका अनुकूल संग प्राप्त पत्र पढ़ लेते थे। देशको शोकसमुद्रमें निमग्न करके हुआ। दक्षिणमें चैत्र तथा श्रावणमें स्त्रियाँ परिचित जस्टिस रानडे सन् १९०१ ई० में परलोकवासी हुए। उस स्त्रियोंके यहाँ जाकर उनको सौभाग्यसूचक हल्दी तथा समय रमाबाईको अवस्था अङ्तीस वर्षको थी। पतिको कुंकुम देती हैं। बदलेमें उनका अंचल भीगे गेहूँ और मृत्युके पश्चात् उन्होंने अपना पूरा जीवन परोपकारमें लगाया। सन् १९०६ ई० से वे नगरकी हलचलोंमें भाग चनेसे भरनेकी प्रथा है। पतिकी सम्मतिसे रमादेवीने इस हल्दी-कुंकुमके बहाने स्त्रियोंको आमन्त्रित करना प्रारम्भ लेने लगीं और सन् १९०८ ई० में श्रीयुत गोपालकृष्ण किया। वे उन्हें सीता, सावित्री, अनसूया, दमयन्ती देवधरकी सहायतासे पुनामें उन्होंने 'सेवा-सदन' की प्रभृतिके पवित्र चरित्र सुनाकर धर्मशिक्षा देती थीं। स्थापना की। अपना सर्वस्व उन्होंने इसी संस्थामें लगा इसी समय सेशन जज मिस्टर कागड अपनी स्त्री, दिया। सास तथा सालीके साथ नासिक आये। कन्या सन् १९२४ ई० के पिछले भागमें उन्होंने शरीर पाठशालाओंका निरीक्षण करके उन्हें पुरस्कार देनेका छोड़ा। अपनेको वे 'पतिदेवके श्रीचरणोंका निर्माल्य' समारोह हुआ। नासिकमें एक सभामें स्त्री-पुरुषोंके कहा करती थीं। अपने आदर्श पतिदेवके चरण-एकत्र होनेका यह प्रथम अवसर था। पुरस्कार वितरित चिह्नोंका अनुगमन करते हुए सम्पूर्ण जीवन उनका होनेके पश्चात् अध्यक्षके प्रति आभार-प्रदर्शनका भार ज्ञानकी प्राप्ति, समाज-सेवा तथा परोपकारमें ही व्यतीत रमाबाईपर था। उन्होंने एक लिखित भाषण पढ़ दिया। हुआ।

संयुक्त परिवारकी आधारशिला—सेवाधर्म (डॉ० माला द्वारी)

\* राम सदा सेवक रुचि राखी \*

नि:स्वार्थ भावसे एक-दूसरेके दु:ख-विपत्तिको बाँटें।

प्राचीनकालसे ही भारतवर्षमें संयुक्त परिवारकी परम्परा चली आ रही है। आधुनिक युगमें भी भारतकी जबतक मानवके मनमें 'तत्त्वमसि' का भाव नहीं होगा,

बुनियाद संयुक्त परिवारपर ही टिकी हुई है। संयुक्त तबतक सेवा पूर्ण नहीं होगी। प्राणिमात्रकी सेवाका मूल परिवारमें एकता और समरूपताके कारण सुव्यवस्थित साधन यही है। यही सच्ची सेवा है। भगवान् भी इसी

समाजका निर्माण होता है तथा सुव्यवस्थित समाजसे ही राष्ट्रका निर्माण सम्भव है। सम्प्रति देखा जाता है कि

366

हमारा परिवार संयुक्तसे ट्रटकर एकलमें परिवर्तित हो रहा है। इसका कारण मानवमें अहंकार, स्वार्थ, संकीर्णता,

ईर्ष्या, प्रमाद आदि है। पाश्चात्य जीवनशैलीके रहन-सहनका अनुसरण भी उसमें सहायक है। अहंकार और

स्वार्थ केवल ये दो चीजें ही मानवको सेवा-धर्मसे च्युत कर देतीं हैं। संयुक्त परिवार आकारमें बड़ा होता है, इसमें तरह-तरहके स्वभावसे युक्त लोग रहते हैं। ऐसेमें

सभीमें पारिवारिक भावना रहती है, परस्पर सहयोगकी भावना रहती है, आपसी सम्बन्धोंमें आबद्ध रहनेके कारण एक-दूसरेके दु:ख-सुखमें सभी सहायक बनते

हैं, फलत: वे सुख-शान्तिसे रहते हैं। परिवारमें प्रत्येक मानवके मनमें सेवाभाव होना चाहिये—

सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः। सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद् दुःखभाग्भवेत्।।

यह श्लोक सेवाभावके अर्थको द्योतित करता है। आदिकालसे ही सेवाभावकी सीख देनेके लिये भगवान् स्वयं हर युगमें अवतरित होते हैं। भगवान् रामने अपने

संयुक्त परिवारके सेवानिमित्त ही चौदह वर्षींका वनवास स्वीकार किया। इसी प्रकार भीष्मने अपने परिवारकी सेवाके निमित्त ही आजीवन ब्रह्मचर्य व्रत धारण किया।

इसी प्रकार कई उदाहरण देखनेको मिलते हैं। वास्तवमें सेवाका मुख्य अर्थ है आत्मतुष्टि। परिवारके प्रत्येक सदस्यका एक-दूसरेके प्रति समर्पणका भाव होना ही सेवा है और यह भाव तभी आ सकता है जब सभी

सदस्योंके मनमें 'सर्वं खिल्वदं ब्रह्म' भाव हो। सभी

सेवासे सन्तुष्ट होते हैं। सेवाका मूल अर्थ तुष्टि ही है। प्राणियोंके क्लेशका निवारण करना ही मूल सेवा है। संसारका निर्माणकर भगवान्ने सेवारूपी अनुपम उपहार सभी प्राणियोंको दिया है। हम स्वार्थ और अहंकार तथा

स्वामित्वभावके चलते सच्ची सेवा नहीं कर पाते। स्वामित्वभाव ही हमारी सेवाको नष्ट कर देता है। पिता-पुत्रका सम्बन्ध, भाई-भाईका सम्बन्ध, सास-

जा रहा है-

बहुका सम्बन्ध, पति-पत्नीका सम्बन्ध, जेठानी-देवरानी आदिका पावन सम्बन्ध परिवारमें सुख-शान्तिको उपस्थापित करता है। धनके लिये कलह, दैनिक कार्यके लिये कलह, अधिकार-कर्तव्यके अर्थको न समझना, बदलेका

भाव, स्वार्थ, ईर्ष्या, द्वेष, बड़ोंका अपमान आदि तत्त्व सेवाभावको नष्ट कर देते हैं। मानवको चाहिये कि '**अहर्निशं सेवामहे**' का भाव रखकर विश्वरूपी परिवारकी सच्ची सेवा करे, यही आनन्दोपलब्धिका

सर्वोच्च साधन है। एक सद्गृहस्थका लक्षण बड़े ही मार्मिक ढंगसे निम्न सुभाषितके द्वारा उल्लिखित किया

िसेवा-

सानन्दं सदनं सुताश्च सुधियः कान्ता मनोहारिणी सन्मित्रं सुधनं स्वयोषिति रतिः सेवारताः सेवकाः। आतिथ्यं सुरपूजनं प्रतिदिनं मिष्टान्नपानं गृहे साधोः सङ्ग उपासना च सततं धन्यो गृहस्थाश्रमः॥

अर्थात् आनन्दसहित घर, विद्वान् सन्तान, सुन्दरी पत्नी, सच्चे मित्र, सात्त्विक धन, स्वपत्नीमें प्रीति, सेवापरायण सेवक, प्रतिदिन अतिथिसत्कार, देवपूजन

एवं भोजनमें मिष्टान्नका प्रबन्ध तथा जिस घरमें साधुओंका संग मिलता रहे और उपासना होती रहे, वह गृहस्थाश्रम

\* सेवा अस्माकं धर्म: \* अङ्क ] धन्य होता है। 'दासोऽहं कोसलेन्द्रस्य' की घोषणा वेदान्तादि वचनोंमें विश्वास करना ही श्रद्धा है। करनेवाले महावीर श्रीहनुमान्जीकी यह उक्ति एक गुरुरग्निर्द्विजातीनां वर्णानां ब्राह्मणो गुरुः। आज्ञापरक और सेवापरक सेवककी भूमिकाको घोषित पतिरेको गुरुः स्त्रीणां सर्वत्राभ्यागतो गुरुः॥ करती है। श्रीरामचरितमानसमें भी गोस्वामी तुलसीदासजी अर्थात् एक सद्गृहस्थके परिवारमें सच्चे सुखकी कहते हैं 'राम काज़ कीन्हें बिनु मोहि कहाँ बिश्राम॥' प्राप्तिके लिये द्वारपर आया हुआ शत्रु भी गुरु-समान सेवकका सम्पूर्ण चरित्र श्रीहनुमान्जीके जीवनसे प्रतिबिम्ब होता है। अतएव परिवारमें आत्मीयता, एकता, संगठनात्मक एवं परिलक्षित होता है-शक्ति इत्यादिकोंके लिये हर एक अभ्यागतकी सेवा सेवितव्यो महान् वृक्षः फलच्छायासमन्वितः। गुरुभावसे करते रहनेपर ही हम एक स्वस्थ परिवारकी संरचना करनेमें सक्षम हो सकते हैं। अत: संयुक्त यदि दैवात् फलं नास्ति छाया केन निवार्यते॥ अर्थात् उस महान् वृक्षकी सेवा करनी चाहिये, जो परिवाररूपी मकानकी नींव सेवाधर्म ही है। सेवाभावसे भरपूर छाया और फलसे आकण्ठ आप्लावित हो। यदि परिवारमें कलहका निवारण एवं शान्तिकी उपस्थापना दुर्भाग्यवश फल न हो तो छाया तो होगी ही। सेवा सच्ची होती है। अतएव परिवार समुन्नत एवं सुदृढ़ होता है। श्रद्धांके साथ ही की जाती है। श्रद्धांका विवेचन 'वेदान्तसार' परिवार सुदृढ़ होनेपर ही सुव्यवस्थित समाजका निर्माण

## सेवा अस्माकं धर्मः ( श्री बी० एस० रावत 'चंचल')

'सेवा मनुष्यकी स्वाभाविक वृत्ति है, सेवा ही

उसके जीवनका आधार है।' उपन्यास-सम्राट् प्रेमचन्दके सड़कके किसी कोनेमें पड़े हुए किसी घायल अथवा

इस कथनका अभिप्राय युवावस्थाके आगमनपर समझमें

आने लगता है, जब व्यक्ति घर-गृहस्थीके जंजालमें

बेहोश व्यक्तिको उठाकर जब हम अस्पताल ले जाते हैं, तब क्या हम यह सोचते हैं कि वह अच्छा हो जानेपर

हमको पुरस्कार देगा अथवा कभी हमारे घायल और उलझने लग जाता है, वह अपनी पत्नी और संतानके लिये बहुत कुछ नि:स्पृह भावसे करनेके लिये विवश हो

बेहोश हो जानेपर यह हमें अस्पताल पहुँचायेगा। यह सेवाभाव जब सप्रयास विकसित किया जाता

आवश्यक है।

है, तब वह व्यक्तिका सद्गुण समाजकी विभूति बन

जाता है। जो लोग सेवाभाव रखते हैं और स्वार्थ-

सिद्धिको जीवनका लक्ष्य नहीं बनाते, उनको सहयोग देनेवालोंकी कमी नहीं रहती, परंतु गोस्वामीजीकी लिखी पंक्तिका भाव समझिये—'*सेवा धर्म कठिन जग जाना* ' अर्थात् संसार जानता है कि सेवा करना बहुत कठिन

काम है। सेवामें स्वार्थ-त्याग और निरहंकारिता परम

होता है तथा समाजोत्थानसे राष्ट्रनिर्माण सम्भव है।

अतः सेवाधर्म ही संयुक्त परिवारकी आधारशिला है।

सहायता किसी आन्तरिक प्रेरणावश ही करते हैं।

प्रकाश एवं उष्णता प्रदान करते हैं। वायु जीवनदायक श्वास प्रदान करती है, पृथ्वी रहनेका स्थान देती है, वृक्ष छाया देते हैं आदि। वे ऐसा किसी प्रतिफलप्राप्तिकी भावनाको लेकर नहीं करते, वे तो केवल अपने जन्मजात स्वभाववश ऐसा करते हैं। हम भी दीन-दुखियोंकी

जाता है-किसी बाह्य दबावके कारण नहीं, बल्कि

करता हुआ दिखायी देता है। सूर्य और चन्द्र विश्वको

प्रकृतिमें सेवाका नियम अव्याहत गतिसे कार्य

अपनी आन्तरिक प्रेरणाके कारण।

में इस प्रकारसे किया गया है 'गुरूपदिष्टवेदान्तवचनेषु

विश्वासः श्रद्धा' अर्थात् सद्गुरुद्वारा उपदेश किया गया



## भगवान् बने सेवक

## [ चार दुष्टान्त]

( डॉ० श्रीअशोकजी पण्ड्या ) उदाहरण प्रस्तुत हैं—

सेवा समर्पणका, समर्पण प्रेमका, प्रेम अपनत्वका

और अपनत्व जीवनका सत्त्व है। सेवासे समर्पण, समर्पणसे

प्रेम, प्रेमसे अपनत्व और अपनत्वसे आत्मानुभवका परम सुख

प्राप्त होता है, जो सेव्य और सेवककी उभय संज्ञा समाप्तकर

ऐक्य स्थापित करता है और तब सेव्यके लिये सेवक तो सेवा

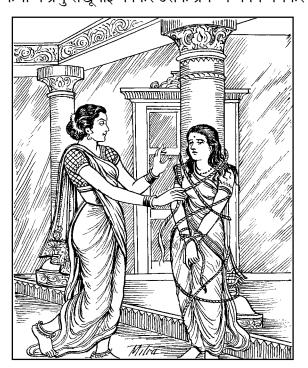
करता ही है, सेवकके लिये सेव्य भी सेवक बन जाता है

तो कोई आश्चर्य नहीं। आइये, इस निर्क्षितिज आश्चर्याकाशमें

जिज्ञासु बन भाव-विहार करें, जहाँ जगन्नियन्ता जगदीश्वर

स्वयं अपने-आपको सेवकके रूपमें प्रस्तुतकर जगत्को

सेवाका विलक्षण पाठ पढ़ाते हैं—'नान्यो सेवोपरि धर्म:।' कभी वे प्रभु सखुबाई बनकर उसके प्रेम-बन्धनमें बँधकर



खम्भेसे बँधने आ जाते हैं तो कभी उगना (उधना) बनकर विद्यापतिके चाकर बन जाते हैं।

(8)

पण्ढरपुर भारतका दूसरा वृन्दावन है, जहाँ भगवान्

पण्ढरीनाथ श्रीविद्वल अद्यतन विराजमान हैं। भक्त-प्रसूता

इस भूमिका वन्दन करते हुए भक्तभूषण नववधू बड़भागी

सखूबाईको यहाँ उद्धृत करना चाहता हूँ, जिसके लिये

स्वयं भगवान्ने सखूबाई बनना स्वीकार किया।

पण्ढरपुरके आसपास दस-बीस कोसकी दूरीके

किसी गाँवकी ब्याहता भक्तबाला सखूबाईको ससुरालका

यहाँतक कि उसे जहाँ-तहाँ दागा भी गया। यह सब सहते हुए भी वह अपने विद्वलको नहीं भूली और

अपनत्व नहीं मिला। कटाक्ष, प्रताड्ना, मारकूट और

पण्ढरपुर जानेकी असफल योजनाएँ बनाती रही। इसके लिये उसने अपने पति, सास, ससुर सभीसे अनुनय किया

तथापि बहुको अनुमित नहीं, अपमान ही मिला। एक बार वह घरसे पानी भरने कुएँपर गयी और वहींसे

पण्ढरपुर चलती बनी, लेकिन किसी पड़ोसीकी चुगलीसे घसीटते हुए डण्डे खाते घर वापस आना पड़ा।

समय बीता। स्थिति थोड़ी सामान्य हुई और गृहस्थी चलने लगी, लेकिन कहते हैं प्रेमाग्नि बुझती नहीं और ऐसा ही हुआ। कार्तिक पूर्णिमा आनेवाली थी।

देख सखूबाईका सोया मन भी फुदक पड़ा। फिरसे

भक्तोंके समूह-के-समूह पण्ढरपुरको जाने लगे और यह

बिठोबाके दर्शनको जानेकी धुन उसपर सवार हो गयी। वह योजना बनाती रही। सखूबाई कहीं चली न जाय,

इस भयसे उसकी सासने उसे खम्भेसे कसकर बाँध दिया। बड़े आर्त स्वरसे उसने कान्हाको पुकारा। अपनी

ag/dharma | MADE WITH LOVE BY Ayinash/Shi Hinduism Discord Server https://dsc

४०६ * राम सदा	मेवक रुचि राखी∗ [ सेवा-
***********	*******************
घरवालोंकी मार और बिठूके प्रेमने उसे खूब रुलाया	। गया।
भगवान् भक्तके आँसू सह नहीं सकते। वे रुक्मिणीव	जे
छोड़कर घबराये हुए सखूबाईकी एक पड़ोसिनके रूप	में कृतार्थ हो जाती है। सखूबाई प्रण करती है कि इस शरीरसे
उसके सामने आये और बोले—'तू पण्ढरपुर चली ज	।,    वह पण्ढरपुर छोड़कर कभी नहीं जायगी। भाव-विभोर
तेरे स्थानपर मैं बँध जाती हूँ।' सखू कुछ बोल भी नह	ीं सखूबाई यात्रा-श्रम और भूख-प्याससे जर्जर हो जाती
पायी कि उसकी पड़ोसिन वेषधारी भगवान्ने उसव	ज है और मन्दिरमें ही ढेर हो जाती है। प्राणविहीन शरीर
बन्धन खोल दिया। पड़ोसिनका आभार मानती हु	ई निढाल हो पृथ्वीपर गिर पड़ता है। तेज-से-तेज मिल
सखूबाई विट्ठल-विट्ठल करती हुई पण्ढरपुरको चल पङ्	ी जाता है। उसे यों गिरते देख अन्य श्रद्धालु नजदीक आते
और भगवान् पण्ढरीनाथ पड़ोसिनके स्थानपर सखूबा	ई हैं। पड़ोसी गाँवोंसे आये लोग उसे पहचान जाते हैं। अरे
बनकर खम्भेसे बँध गये।	भई, यह तो फलां भाईकी पुत्रवधू है। बहुत बुरा हुआ।
इधर सखूबाई बने भगवान्को खम्भेसे बँधे औ	र पुजारीजी एवं मन्दिर-प्रबन्धक सखूबाईकी उत्तर-
बिना खाये-पिये पन्द्रह दिन बीत गये। उनका शरी	र क्रिया करते हैं और पड़ोसी गाँवके यात्री उसकी
सूखकर पीला पड़ गया था, पर सासके मनमें करुण	॥ अवशिष्ट अस्थियाँ ले अपने गाँवोंको लौट जाते हैं। इधर
नहीं संचरित हो सकी। 'कहीं मर गयी तो विवाह हो	ा। भगवती रुक्मिणीजी घबरायीं कि 'यह तो खूब रही।
सम्भव नहीं है' इस भय और स्वार्थसे उसके पति	ने    उधर स्वामी सखूबाई बनकर उसके परिवारकी सेवा कर
बन्धन खोल दिया। अब भगवान्ने सखूबाईके कार	ग रहे हैं, इधर सखूबाईकी अन्त्येष्टि हो गयी। तुरन्त आकर
उसके पतिकी डाँट, मार और सास-ससुरकी प्रताङ्	॥ उन्होंने सखूबाईकी अस्थियाँ एकत्रितकर उसे पुनर्जीवित
सहन की। एक दिन तो हद हो गयी जब सखूबाईव	ो कर दिया और उसे घर जानेको कहा।'
दाग दिया गया। वाह रे प्रेम! तू क्या-क्या नहीं सह	न इधर जब यात्री अपने गाँव जाते हैं तो दूसरे दिन
करता? कन्हैया! तूने सखूबाई बन जलना भी सह	न प्रात: सखूबाईकी अस्थियाँ ले उसके घर जाते हैं, यह
किया।	समाचार देने कि आपकी बहूका तो मोक्ष हो गया।
सखूबाई बने भगवान् खाना बनाते, सास-ससुरव	ी सास–ससुर घरपर हैं। पति भी काम कर रहा है और
सेवा करते, पतिके पाँव दबाते और सभी नित्य कर्मव	ज तभी सामनेसे सिरपर गगरी रखे सखूबाई आ रही है।
बहू-धर्म निभाते। वाह रे कान्हा! तेरा सख्य भाव	! सभी स्तब्ध! यह कैसा करिश्मा है? विश्वास नहीं
अपनी भक्तके सेवानुरागवश तूने क्या-क्या नहीं किर	॥ होता—सच यह है कि वह, जो हमने देखा है।
और क्या-क्या नहीं सहा! सेव्यका सेवकके रूपमें ऐर	n तबतक असली सखूबाई आती है और नकली
अप्रतिम पात्र अन्यत्र कहाँ दृष्टिगत होगा?	सखूबाई (भगवान्) कुएँसे ही पधार जाते हैं। भगवान्की
सखूबाईकी सेवा-सान्निध्यसे सास, श्वसुर औ	र इस सेवाको हम क्या नाम दें!
पतिमें अद्भुत बदलाव आया। आये भी कैसे नहीं ? स्व	यं (२)
भगवान्का सान्निध्य निष्फल भी तो कैसे हो सकता है	? कन्हैयाकी ऐसी ही एक सेवा-बानगीके लिये
धीरे–धीरे ये भोजनकी सराहना करने लगे। कामव	ी आइये, गुजरात चलते हैं। बात बहुत पुरानी नहीं है।
प्रशंसा करने लगे और अन्तत: सखूबाईके प्रति भाव भ	ी बड़ोदरा रियासत। सयाजी राय गायकवाड़का शासन।
बदल गये। दुर्गुण छूट गये और वात्सल्य उत्पन्न ह	ो छाणी गाँवकी पाठशालामें मनसुखरायजी अध्यापक थे,

•	<b>बने सेवक</b> * <b>४०७</b> *********
 वे बड़ी लगन और निष्ठापूर्वक शिक्षण–कार्य निष्पादित	
करते थे। परिवार सामान्य था, पर साधुता थी। मनसुखराय	अत: प्लेटफार्मपर धीरे-धीरे चलकर दूसरी ओर जा रहे
यदा–कदा साधु–बाबाओंको भटकता देख अपने घर	थे और शालामें क्या हुआ होगा, यह सोच-सोचकर
बुला लेते। देवीजी क्रोधित तो होतीं, लेकिन निभा लेती	दुखी हो रहे थे।
थीं। गुरुजीकी बड़ी इज्जत थी तथापि मुखियाजीसे	उधर मुखियाजी के लड्डू खाकर निरीक्षक महोदय
अनजानी अनबन रहती थी। मास्टरजी ईमानदार जो	पाठशाला पहुँचते हैं। देखते हैं कि शाला व्यवस्थित,
उहरे।	अनुशासित चल रही है। अध्यापकजी पढ़ा रहे हैं और
एक दिन विद्यालयमें निरीक्षक महोदय आये।	बालक ज्ञानार्जन कर रहे हैं। वह तो आकण्ठ प्रसन्न हो
मनसुखरायजीका काम और व्यवहार देख प्रसन्न हो	गये और सन्तोषजनक टिप्पणीके साथ पाँच रुपये
गये। बच्चोंका ज्ञान परखनेपर सन्तोष मिला तो अच्छी	वेतनवृद्धि भी अनुमोदित कर गये।
टिप्पणी लिख वेतनवृद्धिकी सिफारिश भी कर गये।	निरीक्षणोपरान्त निरीक्षक महोदय (मुखियाजीकी)
मुखियाजीको यह रास नहीं आया। किसी अन्य निरीक्षणकी	घोड़ा-गाड़ी से बड़ोदरा गये। आज शनिवार होनेसे घर
प्रतीक्षा करने लगे।	जानेके लिये स्टेशन जाकर गाड़ी पकड़ी और रवाना
मनसुखरायजीके इष्ट श्रीरणछोड़राय थे। वह हर	हुए। गाड़ी आणंद पहुँची। सहसा चिन्तित मनसुखरायपर
पूर्णिमाको अपने आराध्यके दर्शन करने डाकोर जाया	उनकी निगाह पड़ी। पुकारा—मनसुखरायजी!
करते थे। बड़ोदरासे आणंद जंक्शन और आणंदसे गाड़ी	मनसुखराय इधर–उधर देखने लगे कौन पुकार रहा
बदल डाकोर जाना होता था। इसमें दिनभरका समय	है ? देखा तो भौचक्के रह गये निरीक्षक महोदय, हाथ
लगता और इसीलिये गुरुजी इस दिन अवकाशपर होते	जोड़ प्रणाम किया। कुशलक्षेम पूछी और चायका आग्रह
थे। अवकाशका प्रार्थना-पत्र मुखियाजीसे अनुमोदित	किया।
करवाना पड़ता था।	निरीक्षक महोदयको मनसुखरायका यह बर्ताव
आज पूर्णिमा थी। मुखियाजी इस दिनकी प्रतीक्षा	आश्चर्य प्रदान कर रहा था, बोले—अरे! दिनभर तो
कर रहे थे। उन्होंने निरीक्षक महोदयको बुलवा लिया।	साथ थे और अभी और आग्रह? मनसुखराय समझे
अपने यहाँ लड्डूका भोजन कराया और पाठशाला	नहीं। बोले—क्षमा करना साहब, मैं आज अवकाशपर
भेजा। वह जानते थे कि अर्जी मैंने स्वीकार नहीं की	था। पूर्णिमा होनेसे डाकोर गया था और वहींसे लौट रहा
है और मनसुखराय पक्के वैष्णव हैं। वह डाकोर जायँगे	हूँ। निरीक्षकने आश्चर्य व्यक्त करते हुए उलाहना
ही।	दिया—'क्यों क्रीड़ा करते हो मास्टरजी, मैं तो आज
मनसुखराय दुखी मनसे विद्यालयसे रवाना हुए	आपके विद्यालयमें आपके साथ ही तो था। हमने साथ
और डाकोर पहुँच अपने आराध्यके दर्शन कर रहे हैं।	मिलकर सभी गतिविधियाँ करवायीं। रिकार्ड देखा।
लेकिन उन्हें लगा कि आज रणछोड़रायके विग्रहमें	बच्चोंकी परख ली। पाँच रुपये वेतनवृद्धि भी लिखी और
कान्ति नहीं है। उन्होंने बार-बार अपनी आँखें मलीं फिर	यह क्या कह रहे हो?'
भी परिवर्तन नहीं हुआ तो वह अनमने मनसे वापस	मनसुखराय स्तब्ध! समझते देर नहीं लगी कि
लौटने लगे। तभी विग्रहकी आभा लौट आयी और	आज रणछोड़रायके विग्रहमें ओज क्यों नहीं था। वे
मनसुखराय तृप्त-प्रसन्न मनसे लौटकर स्टेशन आये।	फफककर रो पड़े। बोले—वाह रे दीनानाथ! तूने आज

४०४	* राम सदा सेव	क रुचि राखी∗ [सें	ग-
***********************	**********	*****************	<b>95 95</b>
मेरे लिये अपना धाम छोड़ा। मेरी लाज	। बचाने तू आज	कर लेता हूँ।'	
मनसुखराय बन गया और छाणी पहुँ	चा। मनसुखराय	'नहीं पण्डितजी, मुझे तो अपनी सेवामें रख	ही
नि:शब्द निढाल लेकिन निहाल हो ग	ये।	लीजिये। आपका काम पूराकर पण्डिताइनजीके कार	नमें
सँभलते तबतक गाड़ी आ गयी	और मनसुखराय	हाथ बटाऊँगा। बाजार जाऊँगा, राशन लाऊँगा ३	नौर
उसमें चढ़ गये। निरीक्षक महोदय भी	अवाक् रह गये।	कुछ भी काम नहीं हुआ तो आपके यहाँ झाड़ू ल	गा
क्या वह रणछोड़रायके साथ रहे आज	दिनभर। पुलक	दूँगा, लेकिन मुझे निराश न कीजिये।'	
समा नहीं रहा था। दोनों गाड़ियाँ विपर्र	ति दिशामें अपने	पण्डितजी अधिक ना-नुकूर न कर सके उ	नौर
गन्तव्यके लिये आगे बढ़ गयीं।		कहने लगे—'अच्छा भैया, एकसे भले दो। रहना उ	नौर
छाणी पहुँच मनसुखराय विद्याल	य गये और आर्त	मेरा हाथ बँटाना।'	
स्वरमें अपने इष्टको पुकारते स्मरण व	रते घरको गये।	आगन्तुक प्रसन्न हो गया।	
उनका रोम-रोम रोमांचित हो रहा था	। सर्वत्र रणछोड़	'तुम लोगे क्या?' पण्डितजीने पूछा।	
ही दिखायी दे रहे थे।		'कुछ नहीं। खाना-पीना और कभी लँगोट। प्	नुझे
धीरे-धीरे यह चर्चा घर-आँग	न, चौराहे और	और क्या चाहिये।'	
चौराहेसे गाँव और गाँवसे बाहर ह	होती गायकवाड़	'अच्छा भैया, यह तो बताओ तुम्हारा नाम व	स्या
महाराजके कानोंतक पहुँची और आज भी	यह कीर्तिपताका	है ?'	
फहर रही है। समय न इसे मिटा पाया	न मिटा पायेगा।	'उधना।' जवाब मिला।	
यह है—आराध्य—सेव्यका सेवकरूप	। जय रणछोड़!	अब घरमें तीन व्यक्ति हो गये—विद्यापति, उन	को
$(\xi)$		पत्नी और नौकर उधना। दिनचर्या बढ़ने लगी। खान	П-
महाराष्ट्र और गुजरातके बाद अ	ब पूरबमें चलते	रसोई पण्डिताइनको सँभालनी थी। पण्डितजी लिखते	थे
हैं। पण्डित विद्यापितिमिश्र अनोखे शिव	भक्त थे, जो सदा	और उधना उनके तिकया–चद्दर साफ कर देता। कत	नम
अपने आराध्य शिवके पद लिखते रहते	थे। काव्य इतना	सँभालता और स्याही भर देता। बचे समयमें पण्डिता	इन
भावपूर्ण होता था कि देवाधिदेव म	ाहादेव भी उसे	उधनासे झाड़् लगवा लेतीं।	
सुननेको लालायित रहते थे। यही कारण	ा था कि भगवान्	नित्यप्रतिकी यही दिनचर्या थी। एक र्	देन
भोलेनाथ अपने भक्तकी चाकरी क	रनेसे भी नहीं	पण्डितजीको बाहर जाना था। सेवक उधना भी स	ाथ
हिचिकचाये।		जानेको तैयार हो गया। सेवक तो स्वामीके साथ	ही
पण्डितजी अपने घरमें बैठे लेर	बनमें व्यस्त हैं।	जायगा न ? तैयारियाँ हुईं और अगले दिन प्रात: स्वाम	IJ-
उनके यहाँ एक व्यक्ति कामकी इच्छा	से आता है और	सेवकका प्रयाण हुआ। स्वामी आगे, सेवक पीछे।	
आग्रह करता है। विद्यापित बड़े ही र	पहज व्यक्ति थे।	थोड़ी दूर जानेपर दिन निकल आया। सूर्य	देव
कहते हैं—'भैया, मेरे यहाँ तो कोई व	कार्य है नहीं। मैं	अपनी प्रचण्डतासे गर्मी प्रदान कर रहे थे। अत: उधन	गने
तो बस शिवाराधन करता हूँ। मेरे क्य	ा काम है?'	धूपसे बचनेके लिये पण्डितजीपर छतरी धर दी। पण्डित	जी
'कुछ नहीं तो मैं यही काम क	र लूँगा। आपकी	उधनाकी सेवासे सन्तुष्ट और प्रसन्न थे। वार्तालाप	कि
स्याही भर दूँगा।'		साथ पद भी गाये जाने लगे और स्वामी-सेवक सान	न्द
'अरे भई, यह तो क्या काम है ?	यह तो मैं स्वयं	आगे बढ़ने लगे।	

प्यास लगनेसे साथका पानी समाप्त हो चला। पण्डितजीको उउाया और हृदयसे लगाया। 'वत्स! तुम्हारा कल्याप्त हो, में जा रहा हूँ।' तलाशा गया। बहुत दूर-दूरतक देखनेपर भी कहीं पाना नहीं मिला तो उधनासे स्वामीका कष्ट देखा नहीं गया और छाता उन्हें दे 'अभी आता हूँ' कह पानी लेने चल दिया। यो थोड़ी ओट पड़नेपर उधनाने अपने दाँवें पैरका अँगूठा पृथ्वीपर दबाया। तत्काल गंगाजी प्रकट हो गयीं और पात्रमें समा गर्यी। उधना लोटा लेकर विद्यापितजीके पास आया और जलका आग्रह किया। जैसे ही पण्डितजीने जल अपने मुँहमें डाला, स्तब्ध रह गये। इतना शीतल और अनुपम स्वाद। पष्टितजीको सन्देह हो गया कि यह उधना कोई विलक्षण ही है। आस-पास नजर दौड़ायी। कोई विलक्षण ही है। अस-पास नजर दौड़ायी। कोई वुर्ववहार हो जाय। इसी ऊहापोहमें सेव्य और गनत्व्य अर्जितकर स्वामी—सेवक घर लौट अर्थ नित्रमें हैं हो ले चल वहाँ।' उपना! तुम कौन हो?' महामृत्युंजय भगवान आशुतोष असत्य भाषण कैसे करते? सत्य अवतरित हुआ। विद्यापित आगे उनकी एक न चली और शिवको अपना स्वरूप प्रकट करना पढ़ा—'विद्यापित! मैं तुम्हारी सेवामें उधना बना तुम्हार आराध्य शिव हुमी हमारे लगी। उधना इसे सहजतासे लेता अपन स्वरूप प्रकट नित्रमें अता पढ़ा हमें हो हमारे लगी। उधना इसे सहजतासे लेता अपन स्वरूप आराध्य शिव हुमी हमारे तहार थे। उनसे नहीं रहा गया और वाचा फूह सिलान सेवा पत्र हमारे जाया और वाचा फूह सिलान हमारे वहार थे। वहार सेवामे नहीं रहा गया और वाचा फूह सिलान हमारे अता प्रवह्म हमें हमारे लगी। वहार विद्यापित हमारे जाया और वाचा फूह सिलान हमारे विद्यापित हमारे जाया हमारे नहीं रहा गया और वाचा फूह सिलान हमें हमारे लगी। वहार हमारे नहार ते हमारे नहार ते हमारे नहार ते हमारे नहार ते हमारे नहार विद्यापित हमारे विद्यापित हमारे विद्यापित हमारे विद्या	अङ्क ] * भगवान् र	बने सेवक * ४०९	
प्यास लगनेसे साथका पानी समाप्त हो चला। पण्डितजीको उठाया और हृदयसे लगाया। 'वत्स! तुम्हारा कल्याप पुनः प्यास लगी। आस-पास कुँआ या अन्य स्रोत तलाशा गया। बहुत दूर-दूरतक देखनेपर भी कहीं पानी नहीं मिला तो उधनासे स्वामीका कष्ट देखा नहीं गया और छाता उन्हें दे 'अभी आता हूँ' कह पानी लेने चल दिया। थोड़ी ओट पड़नेपर उधनाने अपने दाँवें पैरका अँगुठा पृथ्वीपर दबाया। तत्काल गंगाजी प्रकट हो गयीं और पात्रमें समा गर्यी। उधना लोटा लेकर विद्यापितजीके पास आया और जलका आग्रह किया। जैसे ही पण्डितजीने जल अपने मुँहमें डाला, स्तब्ध रह गये। इतना शीतल और अनुपम स्वाद। पण्डितजीको सन्देह हो गया कि यह उधना कोई विलक्षण ही है। आस-पास नजर दौड़ायी। कोई उधना! जल कहाँसे लाया?' 'जी, पासहीके एक कुण्डसे।' 'चल, मुझे ले चल वहाँ।' उधना! जल कहाँसे लाया?' 'जी, पासहीके एक कुण्डसे।' 'चल, मुझे ले चल वहाँ।' उधना चहुत अनुनय-विनय और टालमटोल की, लेकिन पण्डितजीकी आँखें छलछला आर्यो—'उधना! तुम कौन हो?' महामृत्युंजय भगवान् आशुतोष असत्य भाषण कैसे करते? सत्य अवतरित हुआ। विद्यापतिके आगे उनकी एक न चली और शिवको अपना स्वरूप प्रकल करना पड़ा—'विद्यापति! मैं तुम्हारी सेवामें उधना बना तुम्हारा आराध्य शिव हूँ। वत्स! तुम्हारा प्रेम और भाविभायो काव्य-रस मुझे तुमसे दूर न रख सके और स्वामीका कर्तव्य निभा रहा था, लेकिन विद्यापति हैं सत्य जाते थे। उनसे नहीं रहा गया और वाचा फूह सतिले इसी रूपमें आता पड़ा, पुत्र! तुम्हारा कल्याण हो।' निक्ती—''अरे भाग्यवान्! यह कया अनहोनी कर दी	*************************************	<u></u>	
पुनः प्यास लगी। आस-पास कुँआ या अन्य स्रोत हो, मैं जा रहा हूँ।' तलाशा गया। बहुत दूर-दूरतक देखनेपर भी कहीं पानी नहीं मिला तो उधनासे स्वामीका कघ्ट देखा नहीं गया और छाता उन्हें दे 'अभी आता हूँ' कह पानी लेने चल दिया। थोड़ी ओट पड़नेपर उधनाने अपने दाँयें पैरका औंगूठा पृथ्वीपर दबाया। तत्काल गंगाजी प्रकट हो गयी और पात्रमें समा गर्यी। उधना लोटा लेकर विद्यापतिजीके पास आया और जलका आग्रह किया। और मा लिंग जिंग हैं। अतः उठो और क्षोभ न करो। अपं पत्तव्यको प्रस्थान करो।' भीर पात्रमें समा गर्यी। उधना लोटा लेकर विद्यापतिजीके पास आया और जलका आग्रह किया। और से ही पण्डितजीने जल अपने मुँहमें डाला, स्तब्ध रह गये। इतना शीतल और अनुपम स्वाद। पण्डितजीको सन्देह हो गया कि यह उधना कोई विलक्षण ही है। आस-पास नजर दौड़ायी। कोई विलक्षण ही है। आस-पास नजर दौड़ायी। कोई विलक्षण ही है। आस-पास नजर दौड़ायी। कोई सम्भावना नहीं दिख रही थी। पण्डितजी पृछ वैठे— 'उधना! जल कहाँसे लाया?' 'जी, पासहीके एक कुण्डसे।' 'चल, मुझे ले चल वहाँ।' उधनान बहुत अनुनय-विनय और टालमटोल की, लेकिन पण्डितजीको आँखें छलछला आर्यो—'उधना! तुम कौन हो?' महामृत्युंजय भगवान् आशुतोष असत्य भाषण कैसे करते? सत्य अवतरित हुआ। विद्यापतिके आगे उनकी एक न चली और शिवको अपना स्वरूप प्रकट करना पड़ा—'विद्यापति! मैं तुम्हारो सेवामें उधना बना तुम्हारा आराध्य शिव हूँ। वत्स! तुम्हारा प्रेम और भाविभागेया काव्य-रस मुझे तुमसे दूर न रख सके और इसलिये इसी रूपमें आता पड़ा, पुत्र! तुम्हारा करवाणहो।' विक्रांच प्रमें आते थे। उनसे नहीं रहा गया और वाचा फू	जंगल, भरी दुपहरी और चलनेके श्रमसे पण्डितजीको	क्षमा करें। मुझसे यह क्या हो गया।' शिवजीने उन्हें	
तलाशा गया। बहुत दूर-दूरतक देखनेपर भी कहीं पानी नहीं मिला तो उधनासे स्वामीका कघ्ट देखा नहीं गया और छाता उन्हें दे 'अभी आता हूँ' कह पानी लेने चल विषया। योड़ी ओट पड़नेपर उधनाने अपने दाँवें पैरका अँगूठा पृथ्वीपर दवाया। तत्काल गंगाजी प्रकट हो गर्या जैसे ही पण्डितजीको अपने वाले कर विद्यापितजीके पास आया और जलका आग्रह किया। जैसे ही पण्डितजीको सन्देह हो गया कि यह उधना कोई वाला, स्तथ्य रह गये। इतना शीतल और अनुपम स्वाद। पफ समझौता हुआ कि 'में अब भी उधना बनक पुण्डितजीको सन्देह हो गया कि यह उधना कोई विलक्षण हो है। आस-पास नजर दौड़ायी। कोई सम्भावना नहीं दिख रही थी। पण्डितजी पृछ बैठे— 'उधना! जल कहाँसे लाया?' 'जी, पासहीके एक कुण्डसे।' 'चल, मुझे ले चल वहाँ।' उधना वहत अनुनय-विनय और टालमटोल की, लेकिन पिण्डतजी कहाँ माननेवाले थे। उनका सन्देह विश्वासों बदल गया। वह हठ कर बैठे। हठकी विजय हुई। उधना निरुत्तर हो गया तो पण्डितजीकी आँखें छलछला आर्यो—'उधना! तुम कौन हो?' महामृत्युंजय भगवान् आशुतोष असल्य भाषण कैसे करते? सत्य अवतरित हुआ। विद्यापतिके आगे उनकी एक न चली और शिवको अपना स्वरूप प्रकट करना पड़ा—'विद्यापति! मैं तुम्हारी सेवामें उधना बना तुम्हारा आराध्य शिव हूँ। वत्स! तुम्हारा करवाणहो।' विद्यापति! मैं तुम्हारा सेवा करवाणहो।' विद्यापति! यह कया अनहोनी कर दी निरुत्त हुसी स्वर्ण आता पड़ा, पुत्र! तुम्हारा करवाणहो।' विद्यापति! यह कया अनहोनी कर दी निरुत्त विद्यापति! यह कया अनहोनी कर दी निरुत्त हुसी स्वर्ण आता पड़ा, पुत्र! तुम्हारा करवाणहो।' विद्यापति। यह कया अनहोनी कर दी निरुत्त हुसी स्वर्ण आता पड़ा, पुत्र! तुम्हारा करवाणहो।' विद्यापति। यह कया अनहोनी कर दी निरुत्त हुसी स्वर्ण आता पढ़ा, पुत्र! तुम्हारा करवाणहो।' विद्यापति। यह कया अनहोनी कर दी पण्डित निरुत्त हुसी स्वर्ण आता पढ़ा पुत्र! तुम्हारा करवाणहो।' विद्यापति। यह कया अनहोनी कर दी निरुत्त हुसी स्वर्ण आता पड़ा, पुत्र! तुम्हारा करवाणहो।' विद्यापति। यह कया अनहोनी कर दी निरुत्त हुसी स्वर्ण अत्र विद्यापति हुसी स्वर्ण अत्र विद्यापति। यह कया अनहोनी कर दी निरुत्त हुसी स्वर्ण अत्र विद्यापति। यह कया अनहोनी कर दी निरुत्त हुसी स्वर्ण अत्र विद्यापति। यह कया अनहोनी करवे निरुत्त हुसी सेवापति। यह कया अनहोनी करवे निरुत्त हुसी स्वर्ण अत्र विद्यापति सेवापति सेवापति सेवापति सेवापति सेवापति सेवापति सेवापति सेवापत	प्यास लगनेसे साथका पानी समाप्त हो चला। पण्डितजीको	उठाया और हृदयसे लगाया। 'वत्स! तुम्हारा कल्याण	
नहीं मिला तो उषनासे स्वामीका कष्ट देखा नहीं गया और छाता उन्हें दे 'अभी आता हूँ' कह पानी लेने चल दिया। थोड़ी ओट पड़नेपर उधनाने अपने दाँवें पैरका औंगूठा पृथ्वीपर दबाया। तत्काल गंगाजी प्रकट हो गयां जैसे ही पण्डितजीने जल अपने मुँहमें डाला, सतब्ध रह गये। इतना शीतल और अनुपम स्वाद। जैसे ही पण्डितजीने जल अपने मुँहमें डाला, सतब्ध रह गये। इतना शीतल और अनुपम स्वाद। पण्डितजीको सन्देह हो गया कि यह उधना कोई त्रिक्ष हो है। आस-पास नजर दौड़ायी। कोई सम्भावना नहीं दिख रही थी। पण्डितजी पृछ बैठे— 'उधना! जल कहाँसे लाया?' 'जी, पासहींके एक कुण्डसे।' 'चल, मुझे ले चल वहाँ।' 'चल, मुझे ले चल वहाँ।' उधनाने बहुत अनुनय-विनय और टालमटोल की, लेकिन पण्डितजी काँ माननेवाले थे। उनका सन्देह विश्वासमें बदल गया। वह हठ कर बैठे। हठकी विजय हुई। उधना निरुत्तर हो गया तो स्वस्त करते? सत्य अवतरित हुआ। विद्यापित अभेन से करते? सत्य अवतरित हुआ। विद्यापित अभेन उपना स्वस्त अपन् प्रकार प्रकर श्री प्रविद्यापित। से से करते? सत्य अवतरित हुआ। विद्यापित अभेन उनकी एक न चली और शिवको अपना स्वरूप प्रकर करता पड़ा—'विद्यापित! में तुम्हारा सेवामें उधना बना तुम्हारा आराध्य शिव हूँ। वत्स! तुम्हारा प्रेम और स्वामीका कर्तव्य निभा रहा था, लेकिन विद्यापित त्राच पूर्ण अप्रय कामसे पण्डिताइनजी उधनासे नाराज हो उर्च करना पड़ा—'विद्यापित! में तुम्हारा सेवामें उधना बना तुम्हारा आराध्य शिव हूँ। वत्स! तुम्हारा प्रेम और सभी गया को व्यन्त ते स्वामी कार्क्य निमा रहा था, लेकिन विद्यापित त्राच करवीन स्वामी कार्क्य निभा रहा था, लेकिन विद्यापित त्राच करवीन स्वामी कार्क्य निभा रहा था, लेकिन विद्यापित त्राच करवीन स्वामी कार्क्य निभा रहा था, लेकिन विद्यापित त्राच करवीन स्वामी कार्क्य निभा रहा था, लेकिन विद्यापित रही स्वामी कार्क्य निभा रहा था, लेकिन विद्यापित त्राच करवीन स्वामी निभा रहा था, लेकिन विद्यापित स्वामी कार्क्य निभा रहा था, लेकिन विद्यापित स्वामी निभा रहा था, लेकिन विद्यापित निभा रहा था, विद्यापित त्राच करवीन स्वामी निभा रहा था, लेकिन विद्यापित निभा रहा था, विद्यापित निभा र	पुन: प्यास लगी। आस-पास कुँआ या अन्य स्रोत	हो, मैं जा रहा हूँ।'	
अंश छाता उन्हें दे 'अभी आता हूँ' कह पानी लेने चल विद्या। बोले—'वत्स! इसीमें मेरी प्रसन्नता थी। इसमें तुम्हार थोड़ी ओट पड़नेपर उधनाने अपने दाँवें पैरका अंगूठा पृथ्वीपर दबाया। तत्काल गंगाजी प्रकट हो गयीं मत्य्यको प्रस्थान करो।' 'नहीं प्रभु! में आपको छोड़ कहीं नहीं जाऊँगा। जैसे ही पण्डितजीने जल अपने मुँहमें डाला, स्तब्ध रह गये। इतना शीतल और अनुपम स्वाद। पण्डितजीने सन्देह हो गया कि यह उधना कोई विलक्षण ही है। आस-पास नजर दौड़ायी। कोई सम्भावना नहीं दिख रही थी। पण्डितजी पृछ बैठे— 'उधना! जल कहाँ से लाया?' 'जी, पासहीं एक कुण्डसे।' 'चल, मुझे ले चल वहाँ।' उधना! वह कठ कर बैठे। इटकी विजय हुई। उधना निरुत्तर हो गया तो पण्डितजी आँखें छलछला आयों—'उधना! तुम कौन हो?' महामृत्युंजय भगवान् आशुतोष असत्य भाषण कसे करते? सत्य अवतरित हुआ। विद्यापितिक आगे उनकी एक न चली और शिवको अपना स्वरूप प्रकट करना पड़ा—'विद्यापिति! में तुम्हारा सेवामें उधना बना तुम्हारा आराध्य शिव हूँ। वत्स! तुम्हारा सेवामें उधना बना तुम्हारा आराध्य शिव हूँ। वत्स! तुम्हारा प्रेम और स्वामीन कर्तव्य निभा रहा था, लेकिन विद्यापित ते जर दी वत्सी कार्व्य न स्वामीन कर्तव्य निभा रहा था, लेकिन विद्यापित ते अपने स्वामीन कर्तव्य निभा रहा था, लेकिन विद्यापित ते अपने स्वामीन कर्तव्य निभा रहा था, लेकिन विद्यापित ते सत्य जानते थे। उनसे नहीं रहा गया और वाचा फू इसलिये इसी रूपमें आना पड़ा, पुत्र ! तुम्हारा करलाण हो।' विकाली—'वर में निहीं रहा गया और वाचा फू इसलिये इसी रूपमें आना पड़ा, पुत्र ! तुम्हारा कल्याण हो।' विकाली—'वर भाग्यवान्। यह कया अनहोनी कर दी	तलाशा गया। बहुत दूर-दूरतक देखनेपर भी कहीं पानी	'नहीं प्रभु! यह अकृपा न करें। मुझे विलग मत	
बोले—'वत्स! इसीमें मेरी प्रसन्तता थी। इसमें तुम्हार थोड़ी ओट पड़नेपर उधनाने अपने दाँचें पैरका अँगूटा पृथ्वीपर दबाया। तत्काल गंगाजी प्रकट हो गर्यी पत्त्व्यको प्रस्थान करो।' 'नहीं प्रभु! मैं आपको छोड़ कहीं नहीं जाऊँगा। जैसे ही पण्डितजीने जल अपने मुँहमें डाला, स्तब्ध रह गये। इतना शीतल और अनुपम स्वाद। पण्डितजीको सन्देह हो गया कि यह उधना कोई विलक्षण ही है। आस-पास नजर दौड़ायी। कोई सम्भावना नहीं दिख रही थी। पण्डितजी पृछ बैठे—'उधना! जल कहाँसे लाया?' 'जी, पासहीके एक कुण्डसे।' 'चल, मुझे ले चल वहाँ।' उधना! बहुत अनुनय-विनय और टालमटोल की, लेकिन पण्डितजी कहाँ माननेवाले थे। उनका सन्देह विश्वसामें बदल गया। वह हठ कर बैठे। इटकी विजय हुई। उधना निरुत्तर हो गया तो पण्डितजीकी आँखें छलछला आर्यो—'उधना! तुम कोन हो?' महामृत्युंजय भगवान् आयुतोष असत्य भाषण केसे करते? सत्य अवतरित हुआ। विद्यापतिके आगे उनकी एक न चली और शिवको अपना स्वरूप प्रकट करना पड़ा—'विद्यापति! में तुम्हारी सेवामें उधना बना तुम्हारा आराध्य शिव हूँ। वत्स! तुम्हारा प्रेम और सावभिगोया काव्य-रस मुझे तुमसे दूर न रख सके और इसलिये इसी रूपमें आना पड़ा, पुत्र! नुम्हारा कल्याण हो।' विका—'अरे भाग्यवान् शह क्या अनहोनी कर दी	नहीं मिला तो उधनासे स्वामीका कष्ट देखा नहीं गया	करिये। मेरे भाग्य खुल गये तथापि मैं समझ नहीं पाया।	
थोड़ी ओट पड़नेपर उधनाने अपने दाँचें पैरका कोई दोष नहीं है। अतः उठो और क्षोभ न करो। अपने अँगृठा पृथ्वीपर दबाया। तत्काल गंगाजी प्रकट हो गयीं जारे पास आया और जलका आग्रह किया। जैसे ही पण्डितजीने जल अपने मुँहमें डाला, स्तब्ध रह गये। इतना शीतल और अनुपम स्वाद। एक समझौता हुआ कि 'में अब भी उधना बनक पण्डितजीको सन्देह हो गया कि यह उधना कोई रहस्य खुल गया, में तुम्हें छोड़ चला जाऊँगा। सम्भावना नहीं दिख रही थी। पण्डितजी पूछ बैठे— 'उधना! जल कहाँसे लाया?' 'जी, पासहीके एक कुण्डसे।' 'चल, मुझे ले चल वहाँ।' असन्य अर्जतकर स्वामी—सेवक घर लौट आये 'जी, पासहीके एक कुण्डसे।' 'चल, मुझे ले चल वहाँ।' असन्य था तथापि अपने आराध्यद्वारा सेवा करवाने उधनाने बहुत अनुनय-विनय और टालमटोल की, लेकिन पण्डितजी कहाँ माननेवाले थे। उनका सन्देह विश्वसामें बदल गया। वह हठ कर बैठे। हठकी विजय हुई। उधना निरुत्तर हो गया तो पण्डितजीकी आँखें छलछला आयों—'उधना! तुम कौन हो?' महामृत्युंजय भगवान् आशुतोष असत्य भाषण कैसे करते? सत्य अवतरित हुआ। विद्यापतिके आगे उनकी एक न चली और शिवको अपना स्वरूप प्रकट करना पड़ा—'विद्यापति! मैं तुम्हारी सेवामें उधना बना पुम्हारा आराध्य शिव हूँ। वत्स! तुम्हारा प्रेम और सामिका कर्तव्य निर्मा रहा वत्न विद्यापित के स्वर्ण निर्मा ता विद्यापित के अगे उधना से नहीं रहा गया और वाचा फू इसलिये इसी रूपमें आता पड़ा, पुत्र! नुम्हारा प्रेम और सामिका कर्तव्य निभा रहा था, लेकिन विद्यापित के सत्य जानते थे। उनसे नहीं रहा गया और वाचा फू इसलिये इसी रूपमें आता पड़ा, पुत्र! नुम्हारा कल्याण हो।' स्वर्णी—'अरे भाग्यवान् ग्रह क्या अनहोनी कर दी।	और छाता उन्हें दे 'अभी आता हूँ' कह पानी लेने चल	मुझे धिक्कार है, मैंने आपसे सेवा करवायी।' महादेवजी	
अँगूठा पृथ्वीपर दबाया। तत्काल गंगाजी प्रकट हो गर्यो 'गन्तव्यको प्रस्थान करो।' और पात्रमें समा गर्यो। उधना लोटा लेकर विद्यापितजीक 'नहीं प्रभु! मैं आपको छोड़ कहीं नहीं जाऊँगा। केसे ही पण्डितजीने जल अपने मुँहमें डाला, स्तब्ध रह गये। इतना शीतल और अनुपम स्वाद। एक समझौता हुआ कि 'मैं अब भी उधना बनक पण्डितजीको सन्देह हो गया कि यह उधना कोई विलक्षण ही है। आस-पास नजर दौड़ायी। कोई रहस्य खुल गया, मैं तुम्हें छोड़ चला जाऊँगा। सम्भावना नहीं दिख रही थी। पण्डितजी पृछ बैठे— 'उधना! जल कहाँसे लाया?' 'जी, पासहीके एक कुण्डसे।' 'चल, मुझे ले चल वहाँ।' उधना! वह कर कर बैठे। इधनाने बहुत अनुनय-विनय और टालमटोल की, लेकिन पण्डितजी कहाँ माननेवाले थे। उनका सन्देह विश्वसामें बदल गया। वह हठ कर बैठे। इधनाने कहत अनुनय-विनय और टालमटोल की, हटकी विजय हुई। उधना निरुत्तर हो गया तो पण्डितजीकी आँखें छलछला आर्यो—'उधना! तुम कौन हो?' महामृत्युंजय भगवान् आशुतोष असत्य भाषण कैसे करते? सत्य अवतरित हुआ। विद्यापितके आगे उनकी एक न चली और शिवको अपना स्वरूप प्रकट करना पड़ा—'विद्यापित! मैं तुम्हारी सेवामें उधना बना जुम्हारा आराध्य शिव हूँ। वत्स! तुम्हारा प्रेम और स्वामीका कर्तव्य निभा रहा था, लेकिन विद्यापित ते आविभागोया काव्य-रस मुझे तुमसे दूर न रख सके और सत्य जानते थे। उनसे नहीं रहा गया और वाचा फू इसलिये इसी रूपमें आना पड़ा, पुत्र! तुम्हारा कल्याण हो।' 'निकली—'अरे भाग्यवान्! यह क्या अनहोनी कर दी	दिया।	बोले—'वत्स! इसीमें मेरी प्रसन्नता थी। इसमें तुम्हारा	
जौर पात्रमें समा गर्यो। उधना लोटा लेकर विद्यापितजीके 'नहीं प्रभु! में आपको छोड़ कहीं नहीं जाऊँगा। जैसे ही पण्डितजीने जल अपने मुँहमें डाला, स्तब्ध रह गये। इतना शीतल और अनुपम स्वाद। एक समझौता हुआ कि 'में अब भी उधना बनक पण्डितजीको सन्देह हो गया कि यह उधना कोई विलक्षण ही है। आस-पास नजर दौड़ायी। कोई रहस्य खुल गया, मैं तुम्हें छोड़ चला जाऊँगा। सम्भावना नहीं दिख रही थी। पण्डितजी पूछ बैठे— 'उधना! जल कहाँसे लाया?' 'जी, पासहीके एक कुण्डसे।' 'नत्यप्रति शिवसांनिध्यसे विद्यापितको दर अनुबन्ध स्वीकार करना पड़ और गन्तव्य अर्जितकर स्वामी-सेवक घर लौट आये 'नत्यप्रति शिवसांनिध्यसे विद्यापितको हृदय अतिश 'प्रसन्न था तथापि अपने आराध्यद्वारा सेवा करवाने उधनाने बहुत अनुनय-विनय और टालमटोल की, लेकिन पण्डितजी कहाँ माननेवाले थे। उनका सन्देह विश्वसांने चरल गया। वह हट कर बैठे। इसलिये निभाते रहे, लेकिन सावधान रहने लगे विवश्वसामें बदल गया। वह हट कर बैठे। उधनासे कोई एसा-वैसा कार्य न करवाया जाय और इसलिये निभाते हो गया तो पण्डितजीकी आँखें छलछला आर्थी—'उधना! तुम कौन करते? सत्य अवतरित हुआ। विद्यापितके आगे उनकी एक न चली और शिवको अपना स्वरूप प्रकट करना पड़ा—'विद्यापिते! में तुम्हारी सेवामें उधना बन करना पड़ा—'विद्यापिते! में तुम्हारी सेवामें उधना बन करवा पढ़ाने ते त्यापित ते अपन् स्वामीन कर्तव्य निभा रहा था, लेकिन विद्यापित ते अपन स्वामीगोया काव्य-रस मुझे तुमसे दूर न रख सके और सत्य जानते थे। उनसे नहीं रहा गया और वाचा फू इसलिये इसी रूपमें आना पड़ा, पुत्र! तुम्हारा कल्याण हो।' निकली—'अरे भाग्यवान्! यह क्या अनहोनी कर दी	थोड़ी ओट पड़नेपर उधनाने अपने दाँयें पैरका	कोई दोष नहीं है। अत: उठो और क्षोभ न करो। अपने	
पास आया और जलका आग्रह किया।             जैसे ही पण्डितजीने जल अपने मुँहमें डाला, स्तब्ध रह गये। इतना शीतल और अनुपम स्वाद। एक समझौता हुआ कि 'मैं अब भी उधना बनक पण्डितजीको सन्देह हो गया कि यह उधना कोई त्वलक्षण ही है। आस-पास नजर दौड़ायी। कोई रहस्य खुल गया, मैं तुम्हें छोड़ चला जाऊँगा। सम्भावना नहीं दिख रही थी। पण्डितजी पूछ बैठे— 'उधना! जल कहाँसे लाया?' जी, पासहीके एक कुण्डसे।' 'चल, मुझे ले चल वहाँ।' उधनाने बहुत अनुनय-विनय और टालमटोल की, लेकिन पण्डितजी कहाँ माननेवाले थे। उनका सन्देह विश्वासमें बदल गया। वह हठ कर बैठे। इठकी विजय हुई। उधना निरुत्तर हो गया तो पण्डितजीकी आँखें छलछला आयीं—'उधना! तुम कौन हो?' महामृत्युंजय भगवान् आशुतोष असत्य भाषण कैसे करते? सत्य अवतरित हुआ। विद्यापितके आगे उनकी एक न चली और शिवको अपना स्वरूप प्रकट करना पड़ा—'विद्यापित! मैं तुम्हारा सेवामें उधना बना तुम्हारा आराध्य शिव हूँ। वत्स! तुम्हारा प्रेम और भावभिगोया काव्य-रस मुझे तुमसे दूर न रख सके और इसलिये इसी रूपमें आना पड़ा, पुत्र! तुम्हारा कल्याण हो।' निर्वासनीको कर्तव्य निभा रहा था, लेकिन विद्यापित ले भावभिगोया काव्य-रस मुझे तुमसे दूर न रख सके और इसलिये इसी रूपमें आना पड़ा, पुत्र! तुम्हारा कल्याण हो।'	अँगूठा पृथ्वीपर दबाया। तत्काल गंगाजी प्रकट हो गयीं	गन्तव्यको प्रस्थान करो।'	
जैसे ही पण्डितजीने जल अपने मुँहमें डाला, स्तब्ध रह गये। इतना शीतल और अनुपम स्वाद। एक समझौता हुआ कि 'मैं अब भी उधना बनक पण्डितजीको सन्देह हो गया कि यह उधना कोई तुम्हारी सेवामें रह सकता हूँ, लेकिन जिस दिन यह विलक्षण ही है। आस-पास नजर दौड़ायी। कोई रहस्य खुल गया, मैं तुम्हें छोड़ चला जाऊँगा। सम्भावना नहीं दिख रही थी। पण्डितजी पूछ बैठे— प्रेमविह्वल विद्यापितको यह अनुबन्ध स्वीकार करना पड़ 'जी, पासहीके एक कुण्डसे।' जी, पासहीके एक कुण्डसे।' नित्यप्रिति शिवसानिध्यसे विद्यापितका हृदय अतिशक्त 'चल, मुझे ले चल वहाँ।' प्रसन्न था तथापि अपने आराध्यद्वारा सेवा करवानेर उधनाने बहुत अनुनय-विनय और टालमटोल की, लेकिन पण्डितजी कहाँ माननेवाले थे। उनका सन्देह इसलिये निभाते रहे, लेकिन सावधान रहने लगे वि उधनासे कोई एब्यवहार हो जाय। इसी ऊहापोहमें सेव्य औ पण्डितजीकी आँखें छलछला आयीं—'उधना! तुम कौन हि कोई दुव्यवहार हो जाय। इसी ऊहापोहमें सेव्य औ पण्डितजीकी आँखें छलछला आयीं—'उधना! तुम कौन हो कोई दुव्यवहार हो जाय। इसी ऊहापोहमें सेव्य औ सेवकरते? सत्य अवतरित हुआ। विद्यापितके आगे उनकी एक न चली और शिवको अपना स्वरूप प्रकट करना पड़ा—'विद्यापिति! में तुम्हारी सेवामें उधना बना जुम्हारा आराध्य शिव हूँ। वत्स! तुम्हारा प्रेम और स्वामीका कर्तव्य निभा रहा था, लेकिन विद्यापित ते सत्य जानते थे। उनसे नहीं रहा गया और वाचा फू इसलिये इसी रूपमें आना पड़ा, पुत्र! तुम्हारा कल्याणा हो।' निकली—'अरे भाग्यवान्! यह क्या अनहोनी कर दी	और पात्रमें समा गयीं। उधना लोटा लेकर विद्यापतिजीके	'नहीं प्रभु! मैं आपको छोड़ कहीं नहीं जाऊँगा।'	
स्तब्ध रह गये। इतना शीतल और अनुपम स्वाद। एक समझौता हुआ कि 'मैं अब भी उधना बनक पण्डितजीको सन्देह हो गया कि यह उधना कोई तुम्हारी सेवामें रह सकता हूँ, लेकिन जिस दिन यह विलक्षण ही है। आस-पास नजर दौड़ायी। कोई रहस्य खुल गया, मैं तुम्हें छोड़ चला जाऊँगा। सम्भावना नहीं दिख रही थी। पण्डितजी पूछ बैठे— 'प्रेमिबह्बल विद्यापितको यह अनुबन्ध स्वीकार करना पड़ 'उधना! जल कहाँसे लाया?' और गन्तव्य अर्जितकर स्वामी-सेवक घर लौट आये 'जी, पासहीके एक कुण्डसे।' नित्यप्रति शिवसांनिध्यसे विद्यापितका हृदय अतिशर्ण प्रसन्न था तथापि अपने आराध्यद्वारा सेवा करवाने उचका मन भीतर-ही-भीतर कचोटने लगा। वचनबद्ध हैं विश्वसामें बदल गया। वह हठ कर बैठे। इधनाने बहुत अनुनय-विनय और टालमटोल की, लेकिन पण्डितजी कहाँ माननेवाले थे। उनका सन्देह विश्वसामें बदल गया। वह हठ कर बैठे। उधनासे कोई ऐसा-वैसा कार्य न करवाया जाय और इसलिये निभाते रहे, लेकिन सावधान रहने लगे विश्वसामें बदल गया। वह हठ कर बैठे। उधनासे कोई ऐसा-वैसा कार्य न करवाया जाय और इधनासे केई पुट्यंवहार हो जाय। इसी ऊहापोहमें सेव्य औ सेवक एक-दूसरेको निहारते और प्रसन्न होते नित्यचर्या हो?' महामृत्युंजय भगवान् आशुतोष असत्य भाषण कैसे करते? सत्य अवतरित हुआ। विद्यापितिके आगे उनकी एक न चली और शिवको अपना स्वरूप प्रकट करना पड़ा—'विद्यापित! में तुम्हारी सेवामें उधना बना तुम्हारा आराध्य शिव हूँ। वत्स! तुम्हारा प्रेम और स्वामीका कर्तव्य निभा रहा था, लेकिन विद्यापित ते भावभिगोया काव्य-रस मुझे तुमसे दूर न रख सके और सत्य जानते थे। उनसे नहीं रहा गया और वाचा फूर इसलिये इसी रूपमें आना पड़ा, पुत्र! तुम्हारा कल्याण हो।' निकली—'अरे भाग्यवान्! यह क्या अनहोनी कर दी	पास आया और जलका आग्रह किया।	विद्यापित बोले।	
पण्डितजीको सन्देह हो गया कि यह उधना कोई तुम्हारी सेवामें रह सकता हूँ, लेकिन जिस दिन यह विलक्षण ही है। आस-पास नजर दौड़ायी। कोई रहस्य खुल गया, मैं तुम्हें छोड़ चला जाऊँगा। सम्भावना नहीं दिख रही थी। पण्डितजी पृछ बैठे— 'उधना! जल कहाँसे लाया?' और गन्तव्य अर्जितकर स्वामी-सेवक घर लौट आये 'जी, पासहीके एक कुण्डसे।' नित्यप्रति शिवसांनिध्यसे विद्यापितका हृदय अतिशः उधनाने बहुत अनुनय-विनय और टालमटोल की, लेकिन पण्डितजी कहाँ माननेवाले थे। उनका सन्देह विश्वासमें बदल गया। वह हठ कर बैठे। हठकी विजय हुई। उधना निरुत्तर हो गया तो पण्डितजीकी आँखें छलछला आयों—'उधना! तुम कौन सेवक एक-दूसरेको निहारते और प्रसन्न होते नित्यचर्या हो?' महामृत्युंजय भगवान् आशुतोष असत्य भाषण पिरो गये। एक दिन बड़ा कौतुक हुआ। किसी अपूर्ण य करना पड़ा—'विद्यापिति! मैं तुम्हारी सेवामें उधना बना जुम्हारा आराध्य शिव हूँ। वत्स! तुम्हारा प्रेम और स्वामीका कर्तव्य निभा रहा था, लेकिन विद्यापित ते भावभिगोया काव्य-रस मुझे तुमसे दूर न रख सके और सत्य जानते थे। उनसे नहीं रहा गया और वाचा फूर इसलिये इसी रूपमें आना पड़ा, पुत्र! तुम्हारा कल्याण हो।' निकली—'अरे भाग्यवान्! यह क्या अनहोनी कर दी	जैसे ही पण्डितजीने जल अपने मुँहमें डाला,	अत्यन्त अनुनय–विनयके पश्चात् भक्त और भगवान्में	
विलक्षण ही है। आस-पास नजर दौड़ायी। कोई रहस्य खुल गया, मैं तुम्हें छोड़ चला जाऊँगा। सम्भावना नहीं दिख रही थी। पण्डितजी पूछ बैठे— प्रेमिविह्नल विद्यापितको यह अनुबन्ध स्वीकार करना पड़ 'उधना! जल कहाँसे लाया?' और गन्तव्य अर्जितकर स्वामी-सेवक घर लौट आये 'जी, पासहीके एक कुण्डसे।' नित्यप्रिति शिवसांनिध्यसे विद्यापितका हृदय अतिशः 'चल, मुझे ले चल वहाँ।' प्रसन्न था तथापि अपने आराध्यद्वारा सेवा करवाने उधनाने बहुत अनुनय-विनय और टालमटोल की, तेलिकन पण्डितजी कहाँ माननेवाले थे। उनका सन्देह विश्वासमें बदल गया। वह हठ कर बैठे। हठकी विजय हुई। उधना निरुत्तर हो गया तो ही कोई दुर्व्यवहार हो जाय। इसी ऊहापोहमें सेव्य और पण्डितजीकी आँखें छलछला आयीं—'उधना! तुम कौन सेवक एक-दूसरेको निहारते और प्रसन्न होते नित्यचयीं हो?' महामृत्युंजय भगवान् आशुतोष असत्य भाषण कैसे करते? सत्य अवतरित हुआ। विद्यापितिके आगे उनकी एक न चली और शिवको अपना स्वरूप प्रकट करना पड़ा—'विद्यापिति! मैं तुम्हारी सेवामें उधना बना तुम्हारा आराध्य शिव हूँ। वत्स! तुम्हारा प्रेम और स्वामीका कर्तव्य निभा रहा था, लेकिन विद्यापित ते भावभिगोया काव्य-रस मुझे तुमसे दूर न रख सके और सत्य जानते थे। उनसे नहीं रहा गया और वाचा फूर इसलिये इसी रूपमें आना पड़ा, पुत्र! तुम्हारा कल्याण हो।' निकली—'अरे भाग्यवान्! यह क्या अनहोनी कर दी	स्तब्ध रह गये। इतना शीतल और अनुपम स्वाद।	एक समझौता हुआ कि 'मैं अब भी उधना बनकर	
प्रमावना नहीं दिख रही थी। पण्डितजी पूछ बैठे— 'उधना! जल कहाँसे लाया?' और गन्तव्य अर्जितकर स्वामी-सेवक घर लौट आये 'जी, पासहीके एक कुण्डसे।' नित्यप्रति शिवसांनिध्यसे विद्यापितका हृदय अतिश्व प्रमान बहुत अनुनय-विनय और टालमटोल की, उचका मन भीतर-ही-भीतर कचोटने लगा। वचनबद्ध शिक्त पण्डितजी कहाँ माननेवाले थे। उनका सन्देह हिकते विजय हुई। उधना निरुत्तर हो गया तो ही कोई दुर्व्यवहार हो जाय। इसी ऊहापोहमें सेव्य और पण्डितजीकी आँखें छलछला आर्यी—'उधना! तुम कौन सेवक एक-दूसरेको निहारते और प्रसन्न होते नित्यचर्या हो?' महामृत्युंजय भगवान् आशुतोष असत्य भाषण किसे करते? सत्य अवतरित हुआ। विद्यापितके आगे उनकी एक न चली और शिवको अपना स्वरूप प्रकट करना पड़ा—'विद्यापिति! मैं तुम्हारा सेवामों उधना बना युम्हारा आराध्य शिव हूँ। वत्स! तुम्हारा प्रेम और स्वामीका कर्तव्य निभा रहा था, लेकिन विद्यापित ते भावभिगोया काव्य-रस मुझे तुमसे दूर न रख सके और सत्य जानते थे। उनसे नहीं रहा गया और वाचा फू इसिलये इसी रूपमें आना पड़ा, पुत्र! तुम्हारा कल्याण हो।' निकली—'अरे भाग्यवान्! यह क्या अनहोनी कर दी	पण्डितजीको सन्देह हो गया कि यह उधना कोई	तुम्हारी सेवामें रह सकता हूँ, लेकिन जिस दिन यह	
'उधना! जल कहाँसे लाया?'  'जी, पासहींके एक कुण्डसे।'  'चल, मुझे ले चल वहाँ।'  उधनाने बहुत अनुनय-विनय और टालमटोल की, उनका मन भीतर-ही-भीतर कचोटने लगा। वचनबद्ध हैं विश्वासमें बदल गया। वह हट कर बैटे।  हटकी विजय हुई। उधना निरुत्तर हो गया तो ही कोई दुर्व्यवहार हो जाय। इसी ऊहापोहमें सेव्य और पण्डितजीकी आँखें छलछला आयों—'उधना! तुम कौन सेवक एक-दूसरेको निहारते और प्रसन्न होते नित्यचर्या हो?' महामृत्युंजय भगवान् आशुतोष असत्य भाषण परो गये।  कैसे करते? सत्य अवतरित हुआ। विद्यापतिके आगे उनकी एक न चली और शिवको अपना स्वरूप प्रकट करना पड़ा—'विद्यापित! में तुम्हारी सेवामें उधना बना तुम्हारा आराध्य शिव हूँ। वत्स! तुम्हारा प्रेम और स्वामीका कर्तव्य निभा रहा था, लेकिन विद्यापित ते भाविभगोया काव्य-रस मुझे तुमसे दूर न रख सके और सत्य जानते थे। उनसे नहीं रहा गया और वाचा फू इसिलये इसी रूपमें आना पड़ा, पुत्र! तुम्हारा कल्याण हो।' निकली—'अरे भाग्यवान्! यह क्या अनहोनी कर दी	विलक्षण ही है। आस-पास नजर दौड़ायी। कोई	रहस्य खुल गया, मैं तुम्हें छोड़ चला जाऊँगा।'	
'जी, पासहीके एक कुण्डसे।' नित्यप्रति शिवसांनिध्यसे विद्यापितका हृदय अतिश्व क्ष्मां स्वल, मुझे ले चल वहाँ।' प्रसन्न था तथापि अपने आराध्यद्वारा सेवा करवाने उनका मन भीतर-ही-भीतर कचोटने लगा। वचनबद्ध शे तिक्ष्मासमें बदल गया। वह हठ कर बैठे। उधनासे कोई ऐसा-वैसा कार्य न करवाया जाय और हि कोई दुर्व्यवहार हो जाय। इसी ऊहापोहमें सेव्य औ पण्डितजीकी आँखें छलछला आयीं—'उधना! तुम कौन हो?' महामृत्युंजय भगवान् आशुतोष असत्य भाषण कैसे करते? सत्य अवतरित हुआ। विद्यापितके आगे उनकी एक न चली और शिवको अपना स्वरूप प्रकट करना पड़ा—'विद्यापित! मैं तुम्हारी सेवामें उधना बना तुम्हारा आराध्य शिव हूँ। वत्स! तुम्हारा प्रेम और स्वामीका कर्तव्य निभा रहा था, लेकिन विद्यापित ते सिल्य चिमाये करवे निभा रहा था, लेकिन विद्यापित ते सिल्य इसी रूपमें आना पड़ा, पुत्र! तुम्हारा कल्याण हो।' निकली—'अरे भाग्यवान्! यह क्या अनहोनी कर दी	सम्भावना नहीं दिख रही थी। पण्डितजी पूछ बैठे—	प्रेमविह्नल विद्यापतिको यह अनुबन्ध स्वीकार करना पड़ा	
'चल, मुझे ले चल वहाँ।' प्रसन्त था तथापि अपने आराध्यद्वारा सेवा करवानेर उधनाने बहुत अनुनय-विनय और टालमटोल की, उनका मन भीतर-ही-भीतर कचोटने लगा। वचनबद्ध हैं विश्वासमें बदल गया। वह हठ कर बैठे। इधना निरुत्तर हो गया तो ही कोई दुर्व्यवहार हो जाय। इसी ऊहापोहमें सेव्य औ पण्डितजीकी आँखें छलछला आयों—'उधना! तुम कौन सेवक एक-दूसरेको निहारते और प्रसन्न होते नित्यचर्यार हो?' महामृत्युंजय भगवान् आशुतोष असत्य भाषण पिरो गये। कैसे करते? सत्य अवतरित हुआ। विद्यापतिके आगे एक दिन बड़ा कौतुक हुआ। किसी अपूर्ण य उनकी एक न चली और शिवको अपना स्वरूप प्रकट अप्रिय कामसे पण्डिताइनजी उधनासे नाराज हो उर करना पड़ा—'विद्यापति! मैं तुम्हारी सेवामें उधना बना झाड़ूसे मारने लगीं। उधना इसे सहजतासे लेता अपन तुम्हारा आराध्य शिव हूँ। वत्स! तुम्हारा प्रेम और स्वामीका कर्तव्य निभा रहा था, लेकिन विद्यापति ते भावभिगोया काव्य-रस मुझे तुमसे दूर न रख सके और सत्य जानते थे। उनसे नहीं रहा गया और वाचा फूर इसलिये इसी रूपमें आना पड़ा, पुत्र! तुम्हारा कल्याण हो।' निकली—'अरे भाग्यवान्! यह क्या अनहोनी कर दी	'उधना! जल कहाँसे लाया?'	और गन्तव्य अर्जितकर स्वामी-सेवक घर लौट आये।	
उधनाने बहुत अनुनय-विनय और टालमटोल की, उनका मन भीतर-ही-भीतर कचोटने लगा। वचनबद्ध हैं लेकिन पण्डितजी कहाँ माननेवाले थे। उनका सन्देह इसिलये निभाते रहे, लेकिन सावधान रहने लगे विविश्वासमें बदल गया। वह हठ कर बैठे। उधनासे कोई ऐसा-वैसा कार्य न करवाया जाय और हिठकी विजय हुई। उधना निरुत्तर हो गया तो ही कोई दुर्व्यवहार हो जाय। इसी ऊहापोहमें सेव्य औ पण्डितजीकी आँखें छलछला आयीं—'उधना! तुम कौन सेवक एक-दूसरेको निहारते और प्रसन्न होते नित्यचयीं हो?' महामृत्युंजय भगवान् आशुतोष असत्य भाषण पिरो गये। कैसे करते? सत्य अवतरित हुआ। विद्यापितके आगे एक दिन बड़ा कौतुक हुआ। किसी अपूर्ण य उनकी एक न चली और शिवको अपना स्वरूप प्रकट अप्रिय कामसे पण्डिताइनजी उधनासे नाराज हो उर्व करना पड़ा—'विद्यापित! मैं तुम्हारी सेवामें उधना बना झाड़ूसे मारने लगीं। उधना इसे सहजतासे लेता अपने तुम्हारा आराध्य शिव हूँ। वत्स! तुम्हारा प्रेम और स्वामीका कर्तव्य निभा रहा था, लेकिन विद्यापित ते भावभिगोया काव्य-रस मुझे तुमसे दूर न रख सके और सत्य जानते थे। उनसे नहीं रहा गया और वाचा फूर्य इसिलये इसी रूपमें आना पड़ा, पुत्र! तुम्हारा कल्याण हो।' निकली—'अरे भाग्यवान्! यह क्या अनहोनी कर दी	'जी, पासहीके एक कुण्डसे।'	नित्यप्रति शिवसांनिध्यसे विद्यापतिका हृदय अतिशय	
लेकिन पण्डितजी कहाँ माननेवाले थे। उनका सन्देह इसलिये निभाते रहे, लेकिन सावधान रहने लगे विवश्वासमें बदल गया। वह हठ कर बैठे। उधनासे कोई ऐसा-वैसा कार्य न करवाया जाय और इहिकी विजय हुई। उधना निरुत्तर हो गया तो ही कोई दुर्व्यवहार हो जाय। इसी ऊहापोहमें सेव्य औ पण्डितजीकी आँखें छलछला आयीं—'उधना! तुम कौन सेवक एक-दूसरेको निहारते और प्रसन्न होते नित्यचयीं हो?' महामृत्युंजय भगवान् आशुतोष असत्य भाषण पिरो गये। कैसे करते? सत्य अवतरित हुआ। विद्यापितके आगे एक दिन बड़ा कौतुक हुआ। किसी अपूर्ण य उनकी एक न चली और शिवको अपना स्वरूप प्रकट अप्रिय कामसे पण्डिताइनजी उधनासे नाराज हो उस करना पड़ा—'विद्यापित! मैं तुम्हारी सेवामें उधना बना झाड़ूसे मारने लगीं। उधना इसे सहजतासे लेता अपन्तुम्हारा आराध्य शिव हूँ। वत्स! तुम्हारा प्रेम और स्वामीका कर्तव्य निभा रहा था, लेकिन विद्यापित ते भाविभगोया काव्य-रस मुझे तुमसे दूर न रख सके और सत्य जानते थे। उनसे नहीं रहा गया और वाचा फूर इसिलये इसी रूपमें आना पड़ा, पुत्र! तुम्हारा कल्याण हो।' निकली—'अरे भाग्यवान्! यह क्या अनहोनी कर दी	'चल, मुझे ले चल वहाँ।'	प्रसन्न था तथापि अपने आराध्यद्वारा सेवा करवानेसे	
विश्वासमें बदल गया। वह हठ कर बैठे।  हठकी विजय हुई। उधना निरुत्तर हो गया तो ही कोई दुर्व्यवहार हो जाय। इसी ऊहापोहमें सेव्य औ पिण्डतजीकी आँखें छलछला आयीं—'उधना! तुम कौन सेवक एक-दूसरेको निहारते और प्रसन्न होते नित्यचयीं हो?' महामृत्युंजय भगवान् आशुतोष असत्य भाषण पिरो गये। कैसे करते? सत्य अवतरित हुआ। विद्यापितके आगे एक दिन बड़ा कौतुक हुआ। किसी अपूर्ण य उनकी एक न चली और शिवको अपना स्वरूप प्रकट अप्रिय कामसे पिण्डताइनजी उधनासे नाराज हो उर करना पड़ा—'विद्यापित! मैं तुम्हारी सेवामें उधना बना झाड़ूसे मारने लगीं। उधना इसे सहजतासे लेता अपन तुम्हारा आराध्य शिव हूँ। वत्स! तुम्हारा प्रेम और स्वामीका कर्तव्य निभा रहा था, लेकिन विद्यापित ते भावभिगोया काव्य-रस मुझे तुमसे दूर न रख सके और सत्य जानते थे। उनसे नहीं रहा गया और वाचा फूर इसिलये इसी रूपमें आना पड़ा, पुत्र! तुम्हारा कल्याण हो।' निकली—'अरे भाग्यवान्! यह क्या अनहोनी कर दी	उधनाने बहुत अनुनय-विनय और टालमटोल की,	उनका मन भीतर-ही-भीतर कचोटने लगा। वचनबद्ध थे	
हठकी विजय हुई। उधना निरुत्तर हो गया तो ही कोई दुर्व्यवहार हो जाय। इसी ऊहापोहमें सेव्य औ पण्डितजीकी आँखें छलछला आयीं—'उधना! तुम कौन सेवक एक-दूसरेको निहारते और प्रसन्न होते नित्यचर्या हो?' महामृत्युंजय भगवान् आशुतोष असत्य भाषण पिरो गये। कैसे करते? सत्य अवतरित हुआ। विद्यापितके आगे एक दिन बड़ा कौतुक हुआ। किसी अपूर्ण य उनकी एक न चली और शिवको अपना स्वरूप प्रकट अप्रिय कामसे पण्डिताइनजी उधनासे नाराज हो उर करना पड़ा—'विद्यापिति! मैं तुम्हारी सेवामें उधना बना झाड़ूसे मारने लगीं। उधना इसे सहजतासे लेता अपन तुम्हारा आराध्य शिव हूँ। वत्स! तुम्हारा प्रेम और स्वामीका कर्तव्य निभा रहा था, लेकिन विद्यापित त भाविभगोया काव्य-रस मुझे तुमसे दूर न रख सके और सत्य जानते थे। उनसे नहीं रहा गया और वाचा फूर इसिलये इसी रूपमें आना पड़ा, पुत्र! तुम्हारा कल्याण हो।' निकली—'अरे भाग्यवान्! यह क्या अनहोनी कर दी	लेकिन पण्डितजी कहाँ माननेवाले थे। उनका सन्देह	इसलिये निभाते रहे, लेकिन सावधान रहने लगे कि	
पण्डितजीकी आँखें छलछला आयों—'उधना! तुम कौन सेवक एक-दूसरेको निहारते और प्रसन्न होते नित्यचर्या हो?' महामृत्युंजय भगवान् आशुतोष असत्य भाषण पिरो गये। कैसे करते? सत्य अवतरित हुआ। विद्यापितके आगे एक दिन बड़ा कौतुक हुआ। किसी अपूर्ण य उनकी एक न चली और शिवको अपना स्वरूप प्रकट अप्रिय कामसे पण्डिताइनजी उधनासे नाराज हो उर करना पड़ा—'विद्यापित! मैं तुम्हारी सेवामें उधना बना झाड़ूसे मारने लगीं। उधना इसे सहजतासे लेता अपने तुम्हारा आराध्य शिव हूँ। वत्स! तुम्हारा प्रेम और स्वामीका कर्तव्य निभा रहा था, लेकिन विद्यापित ते भावभिगोया काव्य-रस मुझे तुमसे दूर न रख सके और सत्य जानते थे। उनसे नहीं रहा गया और वाचा फूर इसिलये इसी रूपमें आना पड़ा, पुत्र! तुम्हारा कल्याण हो।' निकली—'अरे भाग्यवान्! यह क्या अनहोनी कर दी	विश्वासमें बदल गया। वह हठ कर बैठे।	उधनासे कोई ऐसा-वैसा कार्य न करवाया जाय और न	
हो?' महामृत्युंजय भगवान् आशुतोष असत्य भाषण पिरो गये। कैसे करते? सत्य अवतरित हुआ। विद्यापितके आगे एक दिन बड़ा कौतुक हुआ। किसी अपूर्ण य उनकी एक न चली और शिवको अपना स्वरूप प्रकट अप्रिय कामसे पण्डिताइनजी उधनासे नाराज हो उर करना पड़ा—'विद्यापित! मैं तुम्हारी सेवामें उधना बना झाड़ूसे मारने लगीं। उधना इसे सहजतासे लेता अपने तुम्हारा आराध्य शिव हूँ। वत्स! तुम्हारा प्रेम और स्वामीका कर्तव्य निभा रहा था, लेकिन विद्यापित ते भाविभिगोया काव्य-रस मुझे तुमसे दूर न रख सके और सत्य जानते थे। उनसे नहीं रहा गया और वाचा फूर इसिलये इसी रूपमें आना पड़ा, पुत्र! तुम्हारा कल्याण हो।' निकली—'अरे भाग्यवान्! यह क्या अनहोनी कर दी	हठकी विजय हुई। उधना निरुत्तर हो गया तो	ही कोई दुर्व्यवहार हो जाय। इसी ऊहापोहमें सेव्य और	
कैसे करते? सत्य अवतिरत हुआ। विद्यापितके आगे एक दिन बड़ा कौतुक हुआ। किसी अपूर्ण य उनकी एक न चली और शिवको अपना स्वरूप प्रकट अप्रिय कामसे पिण्डिताइनजी उधनासे नाराज हो उर करना पड़ा—'विद्यापित! मैं तुम्हारी सेवामें उधना बना झाड़ूसे मारने लगीं। उधना इसे सहजतासे लेता अपन तुम्हारा आराध्य शिव हूँ। वत्स! तुम्हारा प्रेम और स्वामीका कर्तव्य निभा रहा था, लेकिन विद्यापित ते भाविभिगोया काव्य-रस मुझे तुमसे दूर न रख सके और सत्य जानते थे। उनसे नहीं रहा गया और वाचा फूर इसिलये इसी रूपमें आना पड़ा, पुत्र! तुम्हारा कल्याण हो।' निकली—'अरे भाग्यवान्! यह क्या अनहोनी कर दी	पण्डितजीकी आँखें छलछला आयीं—'उधना! तुम कौन	सेवक एक-दूसरेको निहारते और प्रसन्न होते नित्यचर्यामें	
उनकी एक न चली और शिवको अपना स्वरूप प्रकट अप्रिय कामसे पण्डिताइनजी उधनासे नाराज हो उर करना पड़ा—'विद्यापित! मैं तुम्हारी सेवामें उधना बना झाड़ूसे मारने लगीं। उधना इसे सहजतासे लेता अपन तुम्हारा आराध्य शिव हूँ। वत्स! तुम्हारा प्रेम और स्वामीका कर्तव्य निभा रहा था, लेकिन विद्यापित ते भाविभिगोया काव्य-रस मुझे तुमसे दूर न रख सके और सत्य जानते थे। उनसे नहीं रहा गया और वाचा फूर इसिलिये इसी रूपमें आना पड़ा, पुत्र! तुम्हारा कल्याण हो।' निकली—'अरे भाग्यवान्! यह क्या अनहोनी कर दी	हो?' महामृत्युंजय भगवान् आशुतोष असत्य भाषण	पिरो गये।	
करना पड़ा—'विद्यापित! मैं तुम्हारी सेवामें उधना बना झाड़ूसे मारने लगीं। उधना इसे सहजतासे लेता अपन तुम्हारा आराध्य शिव हूँ। वत्स! तुम्हारा प्रेम और स्वामीका कर्तव्य निभा रहा था, लेकिन विद्यापित ते भावभिगोया काव्य-रस मुझे तुमसे दूर न रख सके और सत्य जानते थे। उनसे नहीं रहा गया और वाचा फू इसिलिये इसी रूपमें आना पड़ा, पुत्र! तुम्हारा कल्याण हो।' निकली—'अरे भाग्यवान्! यह क्या अनहोनी कर दी	कैसे करते? सत्य अवतरित हुआ। विद्यापतिके आगे	एक दिन बड़ा कौतुक हुआ। किसी अपूर्ण या	
तुम्हारा आराध्य शिव हूँ। वत्स! तुम्हारा प्रेम और स्वामीका कर्तव्य निभा रहा था, लेकिन विद्यापित ते भावभिगोया काव्य-रस मुझे तुमसे दूर न रख सके और सत्य जानते थे। उनसे नहीं रहा गया और वाचा फू इसलिये इसी रूपमें आना पड़ा, पुत्र! तुम्हारा कल्याण हो।' निकली—'अरे भाग्यवान्! यह क्या अनहोनी कर दी	उनकी एक न चली और शिवको अपना स्वरूप प्रकट	अप्रिय कामसे पण्डिताइनजी उधनासे नाराज हो उसे	
भावभिगोया काव्य-रस मुझे तुमसे दूर न रख सके और सत्य जानते थे। उनसे नहीं रहा गया और वाचा फू इसलिये इसी रूपमें आना पड़ा, पुत्र! तुम्हारा कल्याण हो।' निकली—'अरे भाग्यवान्! यह क्या अनहोनी कर दी	करना पड़ा—'विद्यापति! मैं तुम्हारी सेवामें उधना बना	झाड़्से मारने लगीं। उधना इसे सहजतासे लेता अपने	
इसलिये इसी रूपमें आना पड़ा, पुत्र! तुम्हारा कल्याण हो।' निकली—'अरे भाग्यवान्! यह क्या अनहोनी कर दी	तुम्हारा आराध्य शिव हूँ। वत्स! तुम्हारा प्रेम और	स्वामीका कर्तव्य निभा रहा था, लेकिन विद्यापित तो	
, G G	भावभिगोया काव्य-रस मुझे तुमसे दूर न रख सके और	सत्य जानते थे। उनसे नहीं रहा गया और वाचा फूट	
विद्यापित अवाकु! साष्टांग दण्डवतु अपने आराध्यके जानती हो. ये कौन हैं? ये मेरे आराध्य भगवा	इसलिये इसी रूपमें आना पड़ा, पुत्र! तुम्हारा कल्याण हो।'	निकली—'अरे भाग्यवान्! यह क्या अनहोनी कर दी?	
चर्माग्रीयांइमा लिंड द्या अरुम्ला पामेड्ड श्रीकट. प्रमुप्ति आसुतोष स्ट्रिस्य पर्ति प्रमानित स्ट्रिस्य स्ट्रिस्य	विद्यापित अवाक्! साष्टांग दण्डवत् अपने आराध्यके —Hinduism Discord Server https://dsc.gg/dh	जानती हो, ये कौन हैं? ये मेरे आराध्य भगवान् a <u>rmaalla MARE</u> WITH LOVE BY Akinash/Sh	



\* राम सदा सेवक रुचि राखी \* [ सेवा-लोटकर अनुनय-विनय करने लगे, लेकिन शिव तो शिव लेकिन सिपाही नहीं माने और दामाजी को बेडियाँ पहना ठहरे। वचनभंग होते ही अन्तर्धान हो गये। दीं। वह बार-बार अनुनय करते रहे कि एक बार मन्दिर जाकर दर्शन करने दें, लेकिन ऐसा नहीं हो पाया। विद्यापित अचेत हो गये। पण्डिताइन भी दुखी हुईं, लेकिन उधना अब वहाँ नहीं था। तभीसे विद्यापित आठों लाचार दामा बन्दी बन मन-ही-मन विट्रलका स्मरण याम उधना-उधनाकी रट लगाते रहे और पागलोंकी करते, आर्द्र होते अनुगमन करते हैं। तरह उनके विरहमें अनेक छन्द लिख गाते रहे और इधर, बड़ा ही विचित्र प्रसंग हो गया। वाह प्रभु! ढुँढते रहे, लेकिन उधनाको नहीं आना था, नहीं आया। तेरी माया अपरम्पार है। भक्त तो भगवानुके हृदय होते '*उधना! तुझ बिना न आये चैन'* आदि अनेकानेक हैं, वे कैसे अपने भक्तका अपमान सह सकते हैं। पद आज भी सेव्य और सेवककी मार्मिक स्मृति प्रदान परमपिताने दामाजीका रूप लिया और राजदरबार पहुँचे। करते हैं। तदनन्तर विद्यापित अस्वस्थ हो गये और कहते बोले—'श्रीमान्, मैं दामा हूँ। कृपया राशि बतायें, लगान हैं, हठी भक्त कवि विद्यापितके इच्छानुसार गंगा मैया भरना है।' और लगान भर गया। सेव्यने सेवककी चार मीलका रास्ता बदलकर उन्हें लेने उनके गाँव आयीं। मर्यादा रख ली और अपने स्वभाववश अन्तर्धान हो गये। कैसा है भगवान्का स्वभाव, कहा नहीं जा सकता! आज भी यह गंगधार प्रसिद्ध है। यह है सेव्यका सेवाभाव। तभी वह अगम, निर्विकार, परब्रह्म हैं। भक्तके लिये यह भक्तवाटिका पण्ढरपुरकी ही धरतीका प्रसंग है। तत्परता ही ईश्वरका ईश्वरत्व है। श्रीदामाजी नामसे यहाँ एक मर्यादित वैष्णव भक्त हो गये उधर जैसे ही बन्दी दामाको लेकर सिपाही दरबार हैं, जिनके लिये स्वयं भगवान् विद्वलने दामाजीका रूप पहँचे, सभी हक्के-बक्के रह गये। कोषाधिकारीने लिया। घटना कुछ इस प्रकार है— कहा- 'यह क्या हो रहा है?' ये कौन है और इसे यों दामाजी नित्यप्रति 'बिठोबा' के दर्शनकर अपनी घसीटा क्यों जा रहा है?' जवाब मिला—'हुजूर! यह दिनचर्या प्रारम्भ करते थे। प्रतिदिन विट्ठलके मन्दिरके दामा है, इसका लगान बाकी है, अत: उपस्थित है।' आगे जाकर खड़े रहते और दूरसे ही दर्शन-सुख प्राप्त कोषाधिकारीने कहा—अभी तो ये लगान भरकर गये हैं, करते थे, लेकिन अन्तरंग इतने कि स्वयं विद्वल उनके और इन्हें बन्दी बना वापस क्यों लाये हो? हृदयमें समा गये थे। सभी स्तब्ध! दामाजीका तो कहना ही क्या? बेडियाँ-बेडियाँ सब भूल गये। आर्तस्वरसे बोल पड़े-एक बार दामाजीका लगान भरना बाकी रह गया। 'धन्य प्रभु ! मेरे लिये आपने इतना कष्ट उठाया। मेरा रूप प्राय: भक्तोंकी आर्थिक स्थिति ऐसी ही होती है। हो धरकर पैदल श्रम किया।' और उनके अशुओंका पारावार सकता है यह ईश्वरका उनपर अनुग्रह ही हो। हाँ तो लगान बाकी रहनेसे राजाके सिपाही उन्हें लेने आये। न रहा। 'अनुग्रहाय भूतानाम्' स्वतः सिद्ध हो गया। दामाजी गहरी नि:श्वास छोड़ कहने लगे—'अब यह है लीलाधरकी लीला 'सेव्यद्वारा सेवककी सेवा'। भर दूँगा, कृपया थोड़ा समय दीजिये।' सिपाही कहते सुलभा, जना, सेना, नरसी, कूर्मदास-जैसे अनेकानेक हैं—'ऐसा नहीं हो सकता। कई बार माफ किया गया नाम और प्रसंग ईश्वरके ईश्वरत्वको प्रकट करते हैं और है। अब तो तत्काल उपस्थित करनेकी राजाज्ञा है।' शक्तिमान्के सेवास्वरूपका बखान करते नहीं अघाते कि दामाजी चलनेको तैयार हुए। कहते हैं—'चल रहा हूँ। 'ऐसेउ प्रभु सेवक बस अहई। भगत हेतु लीलातनु एक बार विट्ठलके दर्शन कर लूँ फिर चल देता हूँ।' **गहर्इ॥**' (रा०च०मा० १।१४४।७)